युवाओं के लिए बुद्ध

तरुण भारती

युवाओं के लिए बुद्ध

एस. भट्टाचार्य

अनुवाद
मधुकर उपाध्याय

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2544-2

पहला संस्करण : 1998 *(शक 1920)*

Buddha for the Young *(Hindi)*

रु. 20.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय-सूची

प्रस्तावना

यह सवाल किसी के भी मन में आ सकता है कि बुद्ध के जीवन में ऐसा क्या था जो ढाई हजार साल से भी पहले निर्वाण प्राप्त करने के बावजूद आज भी प्रासंगिक है ? संभव है कि बुद्ध इसके उत्तर में कहते कि हरेक को इसका जवाब स्वयं खोजना चाहिए। लेकिन इसके लिए हमें जानने का अवसर मिलना आवश्यक है ताकि हम यह फैसला कर सकें। खासतौर पर यह मौका युवावर्ग को दिया जाना चाहिए और यही इस पुस्तक का उद्देश्य है।

यह पुस्तक बौद्ध धर्म के संबंध में नहीं है। यह बुद्ध के बारे में है। इसमें उनके उपदेशों को भी जहां-तहां स्थान मिला है क्योंकि उनका जीवन ही उनका संदेश था। मुख्य लक्ष्य यह रहा है कि बुद्ध को अपने बारे में कही गयी उनकी बातों के संदर्भ में देखा जाए। लोगों के मन में बुद्ध के संबंध में कुछ अवधारणाएं हैं, पर सवाल यह है कि उनमें सच्चाई कितनी है ? यह बताना इतिहासकारों का काम है कि अतीत कैसा था और वह लोगों की आम अवधारणाओं से कितना मेल खाता है। पिछले कुछ वर्षों में इतिहासकारों ने बुद्ध और उनके समय के बारे में हमारे विचारों को काफी बदल दिया है। एक और तरह का परिवर्तन भी हुआ है। तेजी से बदलती दुनिया अतीत के संबंध में हमारे विचारों और उन घटनाओं के अर्थ बदल देती है। इसलिए कई पुराने विवरण और व्याख्याएं नए अर्थ ग्रहण कर सकते हैं। बुद्ध ने जो कहा और किया वह हमें और खासतौर पर युवावर्ग को एक नए ढंग से अनुभव हो सकता है।

बुद्ध के बारे में कई कहानियां और किंवदंतियां हैं जिन्हें यहां दोहराया नहीं गया है। एक समय था जब बुद्ध के अनुयायी इन कथाओं को सच मान लेते थे। देखने की बात यह है कि आप किसी कविता में एक तरह

का सच पाते हैं, लेकिन आपको दस्तावेजों, समाचारपत्रों और प्रत्यक्षदर्शियों के विवरण से अन्य प्रकार के सच की आशा रहती है। बुद्ध की कथाओं और किंवदंतियों में अक्सर पहली तरह का सच मिलता है लेकिन यह पता लगाना कठिन है कि इनमें से कितनी, उतनी ही सच हैं जितनी किसी प्रामाणिक दस्तावेज या उस काल के किसी प्रत्यक्षदर्शी द्वारा कही या लिखी गई और दर्ज की गई जानकारी है। चूंकि इस पुस्तक में हम मुख्यतया बुद्ध द्वारा कही गई बातों को आधार बना रहे हैं, इसलिए उनसे जुड़ी तमाम किंवदंतियां इसमें शामिल नहीं हैं।

प्रश्न यह है कि हमने सिर्फ बुद्ध के वचनों को ही आधार क्यों बनाया और अन्य संभावित सूचना-स्रोतों की उपेक्षा क्यों कर दी ? हम बुद्ध की कहानी उन्हीं के शब्दों से खोजने का प्रयास करेंगे। और उसका एक कारण है। बुद्ध ने जो कहा उसे लोगों ने धरोहर माना, याद रखा, उनके शिष्यों ने उसे दोहराया और बाद में उसे लिखा भी। यह सही है कि ज्यादातर विवरण वर्षों बाद लिखे गए और जैसे-जैसे समय बीतता गया उनकी जीवन गाथा में कथाएं और किंवदंतियां जुड़ती रहीं। लेकिन इस बात की संभावना काफी अधिक है कि लिखते समय बुद्ध के शब्दों को ठीक ढंग से रखा गया होगा क्योंकि उनके शब्द श्रोताओं को याद थे; क्योंकि वे बुद्ध को आदर की दृष्टि से देखते थे। यही कारण है कि हमने बुद्ध के जीवन के संबंध में उन्हीं के वचनों को आधार बनाया।

अपनी बात लोगों तक पहुंचाने के लिए बुद्ध ने इस काल में पूर्वोत्तर भारत में आम लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा, मगधी और बाद में पालि का इस्तेमाल किया। बौद्ध ग्रंथ भी उसी भाषा में लिखे गए। हम इस पुस्तक में प्राचीनतम सामग्री का उपयोग कर रहे हैं क्योंकि वह संभवतया मूल के सबसे निकट होगी। पालि भाषा की इस सामग्री के अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध हैं। पुस्तक में इन्हीं अनुवादों का इस्तेमाल किया गया है और जिनकी रुचि इससे ज्यादा जानकारी हासिल करने में हो, वे पुस्तक के अंत में दी गयी पुस्तक-सूची की मदद से अन्य ग्रंथ पढ़ सकते हैं। दुर्भाग्यवश, अनेक अंग्रेजी अनुवादों की भाषा आडम्बरपूर्ण और अस्वाभाविक है। हो सकता है कि ऐसा अनुवादकों द्वारा पूरी बात को आध्यात्मिक रंग देने के प्रयास में हुआ हो। किंतु बुद्ध द्वारा किंग जेम्स काल की 'अंग्रेजी बाइबल' की शैली में अपनी बात कहने या वह भाषा बुलवाने का कोई औचित्य नहीं है। अब तो यह

औचित्य और भी कम हो गया है क्योंकि हाल ही के संस्करणों में पुराने विवरणों को संशोधित कर दिया गया है। यही सरलीकरण बुद्ध के प्रवचनों के अनुवाद में भी लाने की अवश्यकता है।

इस पुस्तक में व्यक्तियों और स्थानों के नाम, भारत के विभिन्न हिस्सों में उस समय के विद्वानों की भाषा, संस्कृत और पालि दोनों में दिए गए हैं। पालि नाम कोष्ठकों में हैं। इन नामों के हिज्जे उसी तरह किए गए हैं जैसे भारत में आमतौर पर किए जाते हैं। जिन किताबों से बुद्ध के उद्धरण लिए गए हैं उनकी एक सूची पुस्तक के अंत में दी गई है।

1

गृहस्थ

बुद्ध के बचपन के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। उस समय उनका नाम गौतम या सिद्धार्थ था। उन्हें बुद्ध नाम तब दिया गया जब वे पैंतीस वर्ष की आयु को पार कर चुके थे। सिद्धार्थ कपिलवस्तु के योद्धा शाक्य वंश के थे। शाक्य वंश के बहुत से लोग भूमि के स्वामी तथा किसान थे। कुछ लोग व्यापार करते थे और काफी समृद्ध थे। इन शाक्यों का क्षेत्र हिमालय पर्वत की तलहटी था जो अब भारत और नेपाल की सीमा है। बुद्ध के विचारों से लगता है कि उन्हें शाक्य वंश पर गर्व था। उन्हें अक्सर शाक्य मुनि या बाद के जीवन में शाक्यों का संत कहा जाता था।[1]

युवा सिद्धार्थ या गौतम के बारे में बहुत सी किंवदंतियां हैं लेकिन ऐसी प्रामाणिक जानकारी कम है जिस पर भरोसा किया जा सके। गौतम बुद्ध ने अपने आरंभिक जीवन के बारे में बहुत कम कहा है। उनके बचपन का उल्लेख बुद्ध के एक मर्मस्पर्शी उद्धरण में मिलता है जिस समय वे संन्यासी के रूप में घोर तपस्या कर रहे थे। वे बहुत उत्कंठित होकर याद करते हैं कि कैसे "जब शाक्य, मेरे पिता, हल चला रहे थे, मैं जामुन के पेड़ की ठंडी छांव में बैठा था।" उनके पिता का नाम शुद्धोदन था। वैसे यह एक रोचक तथ्य है कि वे खुद अपने हाथ से हल चला रहे थे। हो सकता है कि वे किसी धार्मिक अनुष्ठान में हिस्सा लेते हुए ऐसा कर रहे हों क्योंकि दंतकथाओं में उनका उल्लेख राजा के रूप में होता है। संभव है कि वास्तविकता में शुद्धोदन शाक्य वंश के एक मुखिया रहे हों। उस समय कोशल के राजा प्रसेनजित (पसेनदि) थे जो इन मुखियाओं से ऊपर रहे होंगे।[2]

जहां तक गौतभ की मां का प्रश्न है, हम निश्चित रूप से सिर्फ इतना जानते हैं कि उनका नाम माया था और उनका जन्म, अपने पति की तरह,

प्लेट *1* : महारानी माया

एक उच्च शासक परिवार में हुआ था। संभवतया उनकी मृत्यु गौतम के शैशवकाल में युवावस्था में ही हो गयी थी। गौतम का पालन-पोषण महाप्रजापति गौतमी नाम की एक स्त्री ने किया था। इसकी जानकारी हमें गौतम के निकट संबंधी आनंद से मिलती है जिन्होंने कहा था कि मां की मृत्यु के बाद बालक गौतम का मौसी ने पालन-पोषण किया और अपना दूध पिलाया था। गौतम का जन्म शाक्यों के इलाके के मध्य, लुम्बिनी में एक शाल वन (वनस्पति शास्त्रीय नाम शोरेआ रोबस्टा) में हुआ था जिसे शाक्य कुल के लोग पवित्र मानते थे। उनकी जन्म तिथि का कोई उल्लेख नहीं मिलता। वैसे ज्यादातर इतिहासकार विभिन्न साक्ष्यों और प्रमाणों के आधार पर मानते हैं कि गौतम बुद्ध की मृत्यु ईसा मसीह के जन्म से 483 साल पहले हुई थी। उन्होंने अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले स्वयं कहा था कि वे उस समय 80 वर्ष के हैं। इस आधार पर हम बुद्ध के जन्म के साल की गणना कर सकते हैं : ईसा मसीह के जन्म से 563 वर्ष पहले।[3]

हमें नहीं पता कि गौतम बुद्ध दिखने में कैसे थे। लाखों की संख्या में उनके जो चित्र (मूर्तियां आदि) मिलते हैं, वे सब उनकी मृत्यु के बहुत बाद में बनाए गए। बहरहाल, उनके अपने वचनों से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उनके बाल काले थे, बीस वर्ष की उम्र के बाद उन्होंने दाढ़ी बढ़ाई थी, उनका रंग साफ था और शरीर सुगठित। गौतम के पिता ने उनका लालन-पालन कुलीन शाक्य योद्धाओं की परंपरा के अनुरूप किया। कहा जाता है कि जब उनके पिता शाक्य कुल के लोगों के आपसी विवादों पर फैसला करने बैठते थे तब युवक गौतम उनके बगल में बैठा करते थे। उनके पिता ने उस समय के कुलीन परिवारों के बच्चों को मिलने वाली हर सुख-सुविधा गौतम को उपलब्ध कराने के उपाय किए थे। बहुत साधारण ढंग से जीवन जीने वाले समाज के मुखिया के घर में यह भी कोई बहुत ज्यादा नहीं रहा होगा। गौतम का विवाह शाक्य वंश की भद्दा काचा या काचना (कुछ ग्रंथों में उनका उल्लेख यशोधरा के रूप में भी मिलता है) से कम उम्र में ही हो गया था। उनके घर में एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम राहुल रखा गया। सब कुछ ठीक वैसा ही चल रहा था जैसा गौतम सरीखे व्यक्ति की उम्र, वंश और संस्कृति के किसी भी व्यक्ति के साथ होता।[4]

लगभग इसी समय, जब उनकी आयु 29 वर्ष थी, गौतम के जीवन में बड़ा परिवर्तन आया। इसकी शुरुआत गौतम के मस्तिष्क में मची

उथल-पुथल से हुई। फलतः वे अपने घर से निकल गए और घुमक्कड़ संन्यासी बन गए। उनके दिमाग में यह उथल-पुथल क्यों हुई ? बाद में उन्होंने कहा है कि पुत्र के जन्म के बाद उन्हें यह अहसास हुआ कि जो भी जन्म लेता है वह जीवन में बीमारी, बुढ़ापे और मृत्यु को सहन करने के लिए आता है। क्या वे इससे मुक्ति का रास्ता तलाश करने के लिए निकल सकते हैं ?[5]

उनके मस्तिष्क में इस तरह के विचार कैसे आए ? क्या आप जानना चाहते हैं ? इस संबंध में एक रोचक कथा है। संभव है कि यह कथा गौतम बुद्ध की कहानी कहने वालों ने बाद में गढ़ ली हो। कहा जाता है कि राजमहल की शान-ओ-शौकत में डूबे गौतम को बुढ़ापा, बीमारी या मौत जैसी चीजों का पता ही नहीं था। एक दिन अपने रथ में जाते हुए गौतम ने एक बूढ़े आदमी को देखकर अपने सारथी से पूछा : ''यह कैसा आदमी है जिसका झुका हुआ शरीर कांपता है, बाल सफेद हैं, दांत टूटे हुए हैं और वह छड़ी के सहारे खड़ा है ?'' उन्हें बताया गया कि हर आदमी बुढ़ापे में ऐसा ही हो जाता है। कुछ दिन बाद गौतम ने अपने रथ से एक बीमार आदमी को देखा और वे रोग की वजह से आदमी को होने वाली पीड़ा से दुखी हो गए। फिर एक दिन गौतम का रथ एक शवयात्रा के सामने से गुजरा और उन्हें पता चला कि हर आदमी एक न एक दिन मर जाता है।[6]

इस तरह गौतम को वह ज्ञान मिला जो महल की सुख-सुविधाओं ने उनसे छिपा रखा था, वह ज्ञान कि आदमी, मृत्यु तक कष्ट झेलता रहता है। और कहा जाता है कि एक दिन गौतम ने पीतांबर ओढ़े एक संन्यासी को देखा जिसका सिर मुंड़ा हुआ था और मुखाकृति शांत थी। गौतम ने सोचा, मुझे इसी आदमी की तरह रहना चाहिए—उन सुख-सुविधाओं से दूर, जिनका कोई अर्थ नहीं है और उन पीड़ाओं से दूर जो इस जीवन में खत्म नहीं होतीं।

विद्वानों के अनुसार निश्चयपूर्वक यह कह पाना मुश्किल है कि ये घटनाएं वास्तव में घटी थीं। फिलहाल, इस कथा का उद्देश्य हमारी कल्पनाशील आंखों के सामने हृदय परिवर्तन की इस असाधारण घटना को रखना है जिसे असानी से समझाया नहीं जा सकता। इस कथा में हमें यह बताने का प्रयास किया गया है कि वे कौन से विचार थे जिन्होंने गौतम

प्लेट 2 : राजकुमार गौतम कपिलवस्तु में अपना घर छोड़ते हुए

को सांसारिक सुख छोड़कर उन पीड़ाओं के बारे में सोचने का अवसर दिया जिनसे कोई नहीं बच पाता। लेकिन इन घटनाओं का गौतम बुद्ध के अपने शब्दों में कोई विवरण हमारे पास नहीं है। उन्होंने सिर्फ इतना कहा था : "मैंने अपने माता और पिता की इच्छा के विरुद्ध सिर और चेहरे के बाल मुंड़वा लिए। उनकी आंखों में आंसू थे। मैंने भगवा रंग के वस्त्र धारण किए और घर से निकलकर एक बेघर जिन्दगी में आ गया।"[7]

गृहस्थ से यायावर बने गौतम बुद्ध भारत के पूर्व और उत्तर में जगह-जगह घूमते रहे। इस पूरे क्षेत्र का एक दिमागी नक्शा बना लेना शायद बेहतर और उपयोगी होगा। बौद्धों के एक प्रारंभिक ग्रंथ के अनुसार उस समय पूर्वी और उत्तरी भारत में 16 राज्य अथवा सीमा-क्षेत्र थे। हमारी दिलचस्पी यहां सिर्फ उन इलाकों में है जिनका, कपिलवस्तु में अपना घर त्यागने के बाद, गौतम बुद्ध ने भ्रमण किया। कपिलवस्तु और शाक्य क्षेत्र के पश्चिम में कोशल राज था (यह क्षेत्र वर्तमान अयोध्या और वाराणसी शहरों के आसपास था), दक्षिण में मगध राज था (आज का दक्षिण बिहार), पूर्व में आदिवासी मल्ल और लिच्छवि क्षेत्र था (यह वर्तमान पूर्वी उत्तर प्रदेश और उत्तरी बिहार के कुछ हिस्सों को मिलाकर बना था) और उत्तर में हिमालय (वर्तमान नेपाल) था। कोशल के आगे कुरुवंश का राज था जिसमें वर्तमान दिल्ली और मथुरा के इलाके आते थे और फिर वत्स राज था, जहां वर्तमान इलाहाबाद और उसके आसपास का क्षेत्र है।

एक घुमंतू संन्यासी और उपदेशक की तरह गौतम बुद्ध बार-बार कोशल और उसकी राजधानी श्रावस्ती (सावत्थी) गए जो उनके जीवन के अंतिम चरण में उनका मुख्यालय हो गया था। बुद्ध ने अपना पहला उपदेश सारनाथ में दिया जो कोशल में बनारस के निकट था। कोशल के राजा प्रसेनजित (पसेनदि) को शाक्य अधिराट मानते थे और प्रसेनजित गौतम बुद्ध का आदर-सम्मान करते थे। कोशल के आगे बुद्ध कभी-कभार कुरु के इलाके में और वत्स देश जाते थे जिसकी राजधानी कोशाम्बी (कोशम) थी। संभव है कि बुद्ध पश्चिम और उत्तर दिशा में उससे आगे न गए हों। दक्षिण में बुद्ध ने मगध का व्यापक भ्रमण किया और कम से कम राजगृह (राजगह) और गया तक गए जो गंगा नदी के दक्षिण की ओर था। मगध के राजा, बिम्बसार का व्यवहार उनके साथ मैत्रीपूर्ण था। प्राप्त जानकारी के अनुसार बुद्ध लिच्छवि देश के वैशाली नगर और मल्लों के इलाके में कुशीनगर

(कुशीनारा) और पावा तक गए। दूरियों का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि कपिलवस्तु और गया के बीच 210 मील (340 किलोमीटर) और कोशल तथा वैशाली के बीच अनुमानतः 255 मील (410 किलोमीटर) का फासला था। यह दूरी वायुमार्ग या पक्षीमार्ग से थी। सड़क से यह दूरी, जाहिर है, ज्यादा रही होगी।

भारत के इन हिस्सों में गौतम बुद्ध को देखा और सुना गया। उस समय दुनिया का स्वरूप क्या था ? चीन में चाऊ वंश का पूरी तरह पतन हो गया था और राजशाही का प्रभाव नहीं के बराबर रह गया था। लगातार आपस में लड़ते रहने वाले देशों में से एक, शानतुंग में, लाऊ में, दार्शनिक कन्फ्यूशियस (551 से 479 ईसा पूर्व) या कुंग फू त्सू रहता था जो बुद्ध का समकालीन था। जापान में बुद्ध के जन्म से करीब एक सौ साल पहले (660 ईसा पूर्व) साम्राज्य की स्थापना हुई थी। बेबीलोनिया में राजा नेबुचाट्रेज्जार का निधन (562 ईसा पूर्व) लगभग उसी समय हुआ जब बुद्ध का जन्म हुआ। आक्सस घाटी में जराथुस्त्र बुद्ध के जन्म से एक या दो दशक पहले एक नए धर्म का उपदेश दे रहा था। फरोहा के मिस्र पर फारस के राजा (525 ईसा पूर्व) का कब्जा हो गया था लेकिन मिस्र की सभ्यता बची हुई थी। फारस में साइरस महान (550 से 529 ईसा पूर्व) का शासन था जो बुद्ध के जीवन के प्रारंभिक वर्ष थे।

अगर आप एशिया से आगे यूरोप की तरफ देखें तो उस समय यूनान अपने चर्मोत्कर्ष पर था और एथेंस की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। नाटककार एशिलस (524 से 456 ईसा पूर्व) और कवि पिन्डार (522 से 441 ईसा पूर्व) बुद्ध के समकालीन थे। यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस (जन्म 582 ईसा पूर्व) बुद्ध से कुछ बड़े थे। इटली में, कहा जाता है कि रोम साम्राज्य की स्थापना बुद्ध के जन्म से 200 साल पहले हुई लेकिन उसे लंबा रास्ता तय करना था। यूरोप में इत्रूस्कन का प्रभाव फैल रहा था और बुद्ध के भारत में यही स्थिति कोशल और मगध की थी। अटलांटिक के उस पार ओल्मेक संस्कृति और एंडियान सभ्यता का उस समय विकास हो रहा था। इसमें से कई तिथियां बहुत सटीक नहीं हैं लेकिन इनसे उस काल की सभ्यताओं का पता चलता है जिसमें बुद्ध का जन्म हुआ और जो उनका जीवन काल था। यह खासतौर पर एक रोचक तथ्य है कि चार महान दार्शनिकों का जन्म एक ही समय में कुछ दशकों के अंतर से हुआ था और इन चारों, जराथुस्त्र, पाइथागोरस, बुद्ध और कन्फ्यूशियस, ने मानव सभ्यता पर अपनी छाप छोड़ी।

2

बटोही

आइए, अपना ध्यान एक बार फिर गौतम बुद्ध पर केंद्रित करें। उन्होंने अपना घर 29 वर्ष की उम्र में यानी 534 ईसा पूर्व छोड़ा था। इसी के साथ सिद्धार्थ गौतम के रूप में उनके जीवन का पहला चरण समाप्त होता है। उन्तीस से पैंतीस वर्ष की उम्र के बीच गौतम संन्यासी की तरह भटकते रहे—एक ऐसी दृष्टि की तलाश में जिससे मानव की पीड़ा का अंत हो सके। यह उनके जीवन का दूसरा चरण था। अपने जीवन के तीसरे चरण में, पैंतीस से अस्सी वर्ष की आयु तक, गौतम लोगों को शिक्षा देते रहे। वे कभी उदाहरणों और कभी अपने उपदेशों के माध्यम से उन्हें जीवन पर अपने दृष्टिकोण के बारे में बताते रहे। यह समयावधि थी 528 से 483 ईसा पूर्व की, यानी लगभग 45 वर्ष। उनके जीवन के अंतिम दिनों और मौत का सन्नाटा छा जाने से पहले के उनके कथन, इस यात्रा का अंतिम चरण थे।

गौतम के अनुसार घर छोड़ने के बाद वे पहले एक संन्यासी आलार कालाम के पास गए, फिर एक अन्य संन्यासी के पास और फिर एक और के यहां। उन्होंने गौतम को अपने ज्ञान के अनुसार योग, ध्यान तथा जीवन की पवित्रता के बारे में शिक्षा दी। लेकिन वे गौतम के दुखों से पूर्णतः मुक्ति से संबंधित प्रश्नों के संतोषजनक जवाब नहीं दे सके।[1] इसलिए गौतम उन्हें छोड़कर "मगध में आम लोगों के बीच भटकने लगे।" उन्हें "एक सुंदर उपवन मिला जिसके पास ही निर्मल जल वाली एक नदी थी और निकट ही एक गांव था जहां से भिक्षा मिल सकती थी।" बुद्ध ने यहीं, किसी गुरु या संन्यासी के मार्गदर्शन के बिना, ध्यान शुरू किया। यह विवरण 'दि नोबल सर्च' (आर्य-परियेसन) नामक ग्रंथ में मिलता है। अन्य स्थानों पर, अपने

प्रिय शिष्य सारिपुत्र और जैन, अग्गिवेषण से बात करते हुए बुद्ध इसका व्यापक विवरण देते हैं। वे बताते हैं कि कैसे उन्होंने स्वयं को खाद्यान्न, आरामदायक कपड़ों, आवास, मनुष्य के साथ आदि से वंचित रखा। उदाहरण के लिए : "अग्गिवेषण, मैंने कुछ ऐसा सोचा : मान लो मैं थोड़ा सा खाना खाऊं, कभी-कभार थोड़ा सा सेम या मूंग का रस या मटर। और मैंने ऐसा ही किया। इससे मेरा शरीर एकदम से अशक्त हो गया। कम भोजन के कारण मेरी अस्थि-संधियां ालबेंत या घासफूस की गांठ की तरह हो गयीं और मेरा पृष्ठ भाग गौर के खुर जैसा हो गया। मेरी रीढ़ की हड्डी सरकंडे की दोहरी गांठ की तरह निकल आयी। मेरी पसलियां जैसे किसी ढहते मकान की कड़ियों की तरह इधर या उधर निकल आयीं। फिर जैसे किसी बहुत गहरे कुएं में बहुत नीचे झिलमिलाते पानी की तरह गहरे गड्ढे में धंसी मेरी आंखों में चमक आ गयी..."[2]

बहरहाल, गौतम इस बात से पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे कि इस तरह के तप, प्रायश्चित और कष्ट उठाने से वे "नश्वरता को पार कर लेने वाला उदात्त ज्ञान" प्राप्त कर सकेंगे। उनका सोचना था : शायद यह ज्ञान प्राप्त करने का रास्ता कोई और है। उन्हें एक तनावशून्य स्थिति की आवश्यकता महसूस हो रही थी ताकि उनके विचारों को दिशा मिल सके। "लेकिन जब शरीर इतना अशक्त हो जाए तो इस तरह की स्थिति में पहुंच सकना मुश्किल है। मान लो कि मैं अब कुछ ठोस भोजन अर्थात् खिचड़ी लूं।" जैसे ही उन्होंने यह कदम उठाया, उनकी देखभाल कर रहे पांच संन्यासी उन्हें छोड़कर चले गए। शारीरिक शक्ति वापस पाने के बाद गौतम ने पुनः ध्यान शुरू किया और एक रात के अंतिम पहर में उन्हें वह ज्ञान मिल गया जिसकी उन्हें तलाश थी : "मुझमें वह प्रकाशपुंज उत्पन्न हुआ।" गौतम को यह अनुभव गया के निकट एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठे हुए हुआ। यह वृक्ष नीरांजना नदी के किनारे था। इसके बाद उन्हें बुद्ध या 'प्रबुद्ध और ज्ञान संपन्न' कहा जाने लगा।[3]

यह याद रखने योग्य बात है कि जो कुछ यहां कुछ शब्दों में कह दिया गया है उसे 29 से 35 साल की उम्र के छह वर्षों में, लंबे संघर्ष के बाद प्राप्त किया गया था। इस रास्ते में आने वाली बाधाओं का उल्लेख बुद्ध ने स्वयं कई बार किया। पहले शारीरिक कष्ट थे। "मुझे याद है सारिपुत्र कि मैंने पवित्र जीवन के पूर्ण चक्र की साधना कैसे की। मैं तप
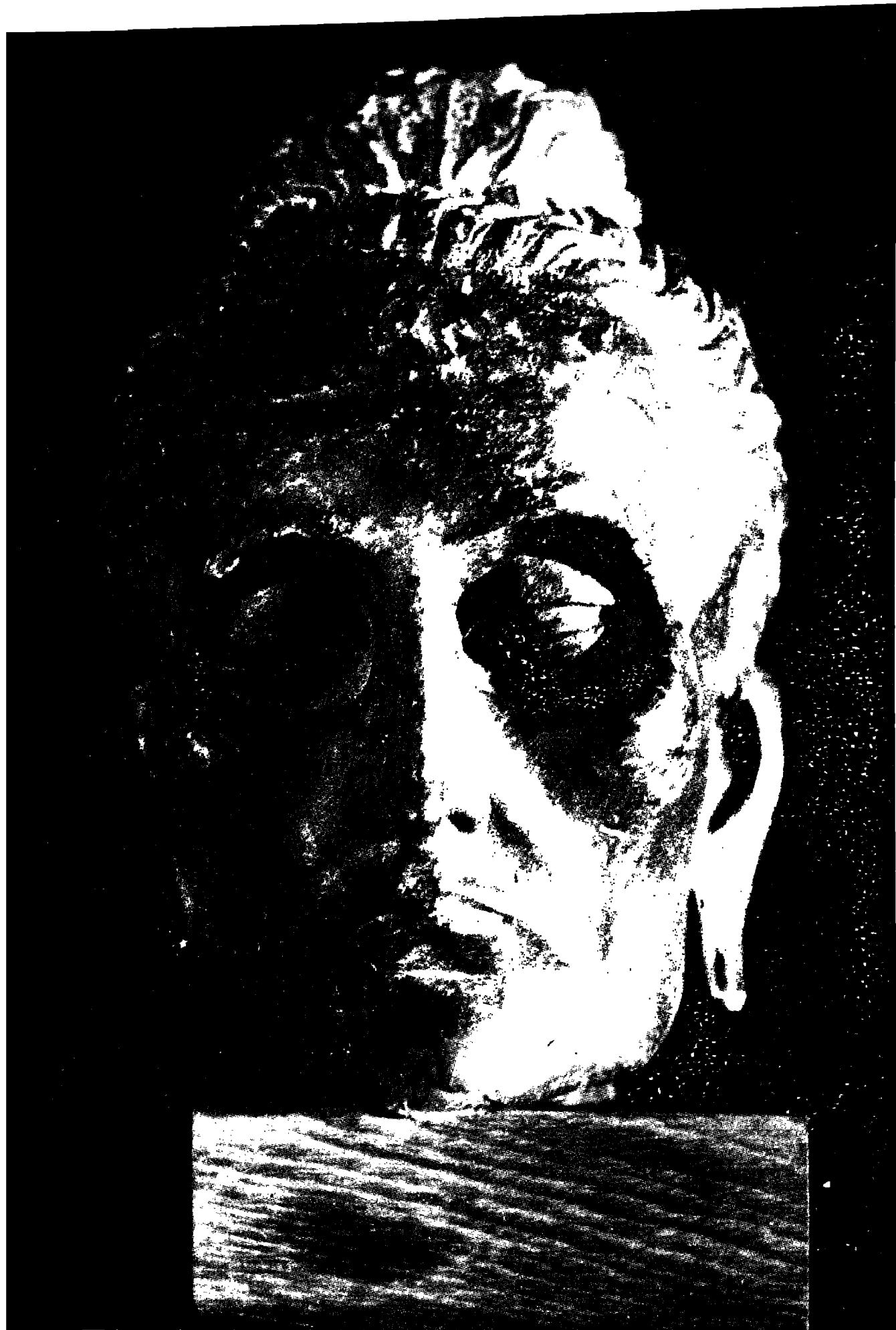
प्लेट 3 : तपस्वी बुद्ध की मुखाकृति

कर रहा था और मैंने अन्य लोगों से ज्यादा तपस्या की।" इसके बाद कुछ भयावह विचार थे जो बाद की दंतकथाओं में पिशाचों के रूप में मिलते हैं। बुद्ध स्वयं इनका वर्णन अत्यंत मानवीय ढंग से करते हैं जिन्हें आसानी से समझा जा सकता है। जब वे जंगल में, अकेले में रात बिताते थे तो कई बार एक डर उन्हें घेर लेता था। "मैं वहां था तो कभी कोई हिरन मुझ तक आ जाता था या कोई मोर एक टहनी नीचे फेंक देता था या कभी हवा नीचे गिरी हुई पत्तियों को सरसराती हुई निकल जाती थी। तब मैं सोचता था कि बस यही अंत है...तभी मेरे मन में यह ख्याल आया कि मेरे अंदर यह डर निरंतर क्यों बना रहता है ?...उस समय मैं न तो चुपचाप खड़ा रहता था, न बैठता था, न ही सोता था; मैं यहां से वहां चलता रहता था और मैंने उस आतंक, संत्रास तथा विभीषिका को अपनी इच्छाशक्ति के आगे झुका दिया... ।"[4]

अंतिम बाधा थी संदेह। बुद्ध के मस्तिष्क में इस बात को लेकर संदेह था कि उन्होंने ज्ञान प्राप्त करके जो सीखा है उसे अन्य लोगों को बताने का प्रयास करना क्या लाभप्रंद और सार्थक होगा। उनके मन में यह विचार आया कि उनका सत्य केवल बुद्धिमान लोगों के लिए है और आम आदमी, हर प्रकार की शिक्षा के बावजूद वहीं अटका रहेगा जहां वह अटका है। "अगर मुझे उनको सत्य की शिक्षा देनी है तो वे उसे नहीं समझेंगे। इससे मेरा प्रयास निष्फल होगा और इससे मैं आहत भी हूंगा।" लेकिन इसी के साथ एक और विचार भी उनके मन में आया : ऐसा नहीं है कि हर आम आदमी या औरत सत्य के दर्शन नहीं करना चाहती...पर इसके बारे में उन्हें किसी ने बताया ही नहीं। इसके बाद बुद्ध की करुणा और संवेदना ने उनके संदेह पर विजय प्राप्त की। उन्होंने संसार में प्रवेश कर उसे शिक्षा देने का फैसला दिया।

यायावर गौतम इसी के साथ शिक्षक बुद्ध हो गए। पहली बार बुद्ध ने लोगों को बनारस के निकट इसिपाटन के हिरण्य उद्यान में शिक्षा और ज्ञान दिया। इसिपाटन को अब सारनाथ कहते हैं। अत्यधिक तप और आत्मयंत्रणा छोड़ने पर बुद्ध से विमुख होकर उन्हें जंगल में छोड़ देने वाले उनके पांच शिष्य उनके पास लौट आए। बुद्ध के धम्म (धर्म) के संबंध में इन्हीं पांच ने सबसे पहले सुना। धम्म का निकटतम सटीक अनुवाद 'सच्चा रास्ता' या 'सत्य' है। इसी मौके पर बुद्ध ने पहली बार निब्बान (निर्वाण)

प्लेट 4 : बोधिवृक्ष

की चर्चा की जिसका अनुवाद विलुप्त होने या अंत होने के रूप में किया जा सकता है। यहीं बुद्ध ने अपने पांच शिष्यों को स्वीकार किया और इसी के साथ संघ की शुरुआत हुई। इस दिन को बाद में धम्म चक्र के घूमने (धर्म चक्र प्रवर्तन) के उत्सव की भांति स्वीकार कर लिया गया। यह संभव है कि बुद्ध ने पहली बार अपने सत्य के बारे में ईसा के जन्म से 528 वर्ष पूर्व, जुलाई महीने की पूर्णिमा को उपदेश दिया।[6]

बुद्ध ने अपने पहले धर्मोपदेश में क्या शिक्षा दी ? प्रारंभ में उन्होंने वह बात कही जो उनके पहले पांच शिष्यों के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक थी। उन्होंने एक बार बुद्ध को छोड़ दिया था जब बुद्ध ने अति संयम और कठोर तप का मार्ग छोड़ा था। बुद्ध ने उन्हें 'मध्यमार्ग' का महत्व समझाया। उन्होंने कहा कि जीवन को विलासिता के हवाले करना बेकार है और उसी तरह भक्तों द्वारा स्वयं को यातना देना भी गलत है। अति से बचकर ज्ञान की तलाश ऐसे तरीके से की जानी चाहिए जिसमें मस्तिष्क भ्रमित न हो—न शारीरिक पीड़ा से और न ही शारीरिक सुखों से। इस तरह मस्तिष्क को दिशा दी जा सकती है।[7]

वह कौन सा लक्ष्य है जिसकी ओर मस्तिष्क को दिशा देनी चाहिए ? इस प्रश्न की ओर कि मानवीय पीड़ा का अंत कैसे किया जाए। बुद्ध ने लोगों को आयु बढ़ने के साथ शरीर के क्षय से, बीमारी और अंततः मौत से पीड़ित होते देखा। यद्यपि शरीर कुछ प्राकृतिक प्रक्रियाओं से संचालित होता है लेकिन यदि मस्तिष्क स्वतंत्र और अनासक्त रहे तो पीड़ा समाप्त हो जाएगी। बुद्ध ने इसके लिए 'इच्छओं से मुक्ति' और त्याग की तत्परता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि यह उन विभिन्न प्रकार की उत्कट इच्छाओं को देखते हुए आसान नहीं होगा जो "कभी यहां और कभी वहां उठती रहेंगी।"[8]

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मस्तिष्क को प्रेरित कैसे किया जाए ? बुद्ध ने इस संबंध में 'उदात्त आठ सूत्री मार्ग' दिखाया। इसमें आठ विषयों पर उचित तथा न्यायसंगत मार्ग शामिल थे : सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि। यह स्पष्ट है कि इनमें से पहले दो जीवन के प्रति दृष्टिकोण से संबंधित हैं, उसके बाद के तीन सामान्य नीतिपरक सिद्धांत हैं और अंतिम तीन का संबंध मानसिक अनुशासन या बुद्ध द्वारा सुझाए गए प्रयोग से है।[9]
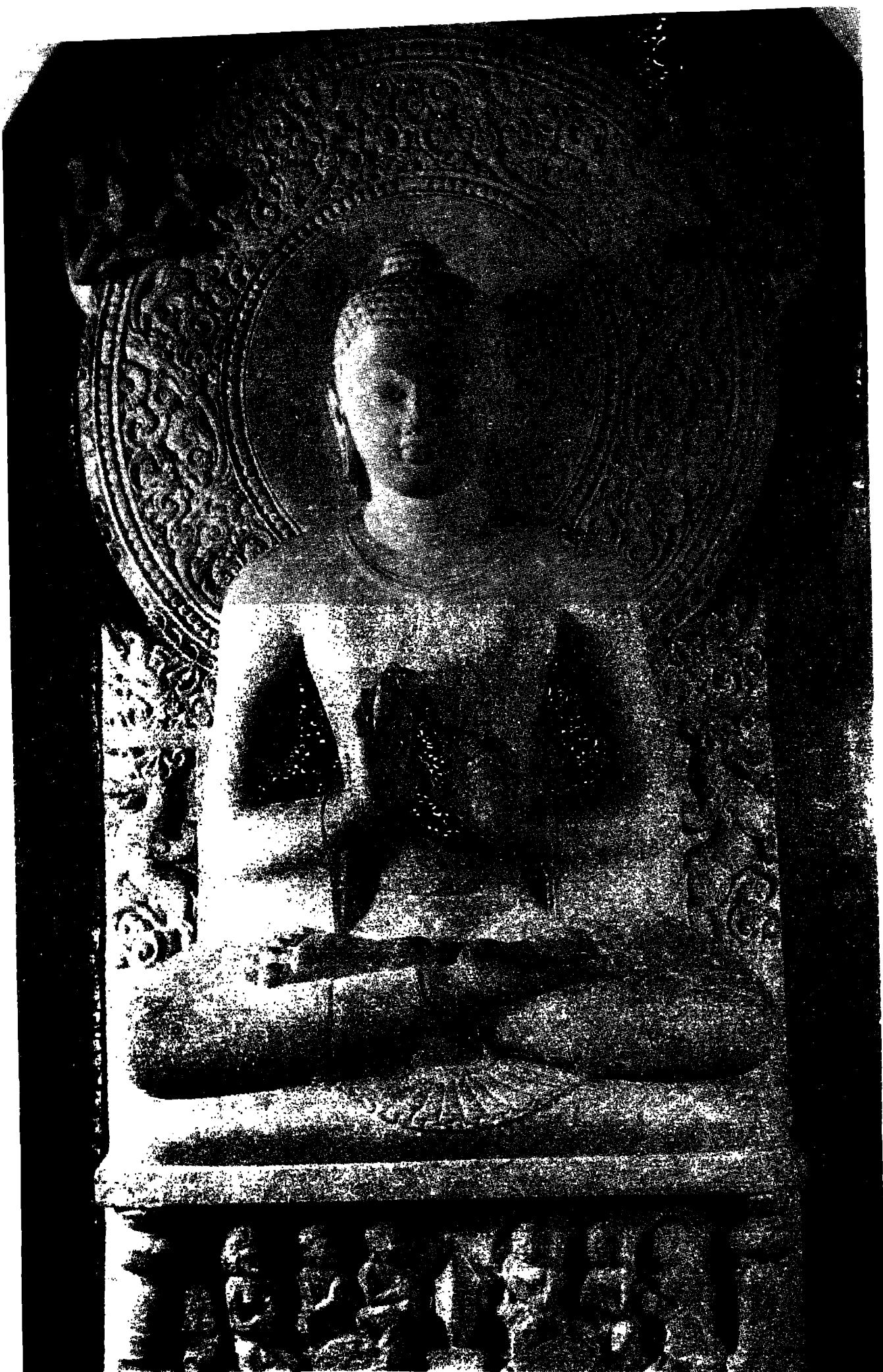
प्लेट 5 : बुद्ध उपदेश देते हुए

'सम्यक् दृष्टि' के संबंध में बुद्ध का कहना है कि इसके लिए मनुष्य को जीवन में मिलने वाले कष्टों की जानकारी जरूरी है। सांसारिक मायामोह छोड़ना और इच्छाओं का परित्याग ही 'सम्यक् संकल्प' है जिससे मानव की पीड़ा समाप्त की जा सकती है। यही दोनों—'सम्यक् दृष्टि' और 'सम्यक् संकल्प'—जीवन पर उस नजरिए का विकास करने में सहायक होंगे जिससे व्यक्ति आत्म विमुक्ति के लिए तैयार होता है।[10]

इसके बाद आयी आचार संहिता और आदर्श सिद्धांत। 'सम्यक् वाणी' में यह व्यवस्था दी गई है कि व्यक्ति को झूठ बोलने से बचना चाहिए, भद्दी भाषा का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए तथा पीठ पीछे निंदा और अनर्गल प्रलाप से दूर रहना चाहिए। 'सम्यक् कर्मान्त' में बुद्ध ने खासतौर पर जीव हत्या, उपहार के अलावा किसी की कोई वस्तु लेना और वासना के वशीभूत होकर गलत काम करने को पूरी तरह प्रतिबंधित माना है। 'सम्यक् आजीव' में कहा गया है कि व्यक्ति को अपना जीवन चलाने के लिए आवश्यक सामग्री गलत काम किए बिना जुटानी चाहिए।[11]

इन नैतिक सिद्धांतों का अनुपालन करने के बाद व्यक्ति के लिए तीन तरह के मानसिक अनुशासन की बात कही गयी है। 'सम्यक् व्यायाम' में मस्तिष्क को एकाग्र करते हुए अपनी पूरी क्षमता के साथ बुराई को परास्त करने तथा अच्छाई की रचना करने को कहा गया है जबकि 'सम्यक् स्मृति' का मतलब है लगातार सतर्क रहना ताकि भावनाओं, अवधारणाओं और क्रियाओं पर नियंत्रण रखा जा सके। 'सम्यक् समाधि' में चिंतन-मनन से धीरे-धीरे ऐसी स्थिति में पहुंचना बताया गया है जहां मस्तिष्क की उदासीनता की वजह से व्यक्ति पीड़ा और सुख से मुक्त हो जाए। यह 'उदात्त अष्ट मार्ग', अगर इसे आप एक साथ देखें तो, जीवन की एक पद्धति है जो बुद्ध ने सुझायी है।[12]

3

बुद्ध

यायावर गौतम पैंतीस वर्ष की आयु में ज्ञान प्राप्त करने के बाद बुद्ध हो गए और अस्सी वर्ष की उम्र में उनका देहावसान हुआ। इन पैंतालीस वर्षों में बुद्ध ने स्वयं को दो लक्ष्यों के प्रति समर्पित कर दिया था : आम लोगों तक अपना संदेश पहुंचाना और भिक्षु कहे जाने वाले मठवासियों का संघ बनाना। उनके व्यक्तिगत जीवन के संबंध में लिखी हुई कुछ सामग्री मिलती तो है और जो मिलती है, उसके आधार पर घटनाक्रम बना सकना या यह कह सकना कि ये घटनाएं वास्तव में हुई थीं, बहुत मुश्किल है। ऐसा लगता है कि ज्ञान प्राप्त होने के कुछ वर्ष बाद बुद्ध कपिलवस्तु में अपने घर लौटे थे। उनकी पत्नी ने अपने पुत्र राहुल से कहा कि वह जाकर अपने पिता से अपने वंशानुक्रम के बारे में पूछे। राहुल ने महल के द्वार के पास खड़े बुद्ध से यह सवाल पूछा तो बुद्ध ने मठवासी का भिक्षापात्र उसे थमा दिया। उन्होंने अपने मुख्य शिष्य सारिपुत्र से कहा कि वे राहुल को संघ में शामिल कर लें। इसके बाद पिता और पुत्र कपिलवस्तु से रवाना हो गए। उनकी परस्पर वार्ता का विवरण हमें बाद में मिलता है। उदाहरण के लिए एक दिन संन्यासियों के वस्त्र पहने और भिक्षापात्र हाथ में लिए बुद्ध श्रावस्ती नगर के लिए निकले। यह देखकर राहुल भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। थोड़ी देर बाद बुद्ध ने पीछे मुड़कर राहुल को देखा और कहा : "तुम्हें स्वयं से यह कहना सीखना होगा राहुल कि यह मेरा नहीं है।" राहुल ने सोचा कि बुद्ध ने उन्हें चेतावनी दी है और वह लौटकर ध्यान में बैठ गए। उन्होंने बुद्ध के इस वचन पर ध्यान लगाया कि व्यक्ति को मायामोह से ऊपर होना चाहिए। ये हृदयस्पर्शी कहानियां हैं।[1]

बुद्ध के एक रिश्तेदार भाई, शाक्य वंश के देवदत्त, उनके संघ में शामिल हुए और बहुत प्रसिद्ध हो गए। ऐसा इसलिए हुआ कि उन्होंने स्वयं को बुद्ध का प्रतिद्वंद्वी घोषित कर दिया। एक बार जब बुद्ध एक सभा को संबोधित कर रहे थे, देवदत्त ने उनके पास आकर कहा : "स्वामी ! अब आप वृद्ध हो गए हैं, इसलिए आपको चिंतामुक्त होकर जीवन व्यतीत करना चाहिए। इसके लिए आपको चाहिए कि आप भिक्षुओं के इस संघ का भार मुझे सौंप दें।" बुद्ध ने इससे इनकार कर दिया और कहा कि देवदत्त इसके योग्य नहीं है। इसके बाद देवदत्त ने संघ को दो भागों में तोड़ने का प्रयास किया लेकिन सारिपुत्र ने उन्हें ही संघ से निकाल दिया। देवदत्त ने बुद्ध की हत्या करने का भी प्रयास किया। समझा जाता है कि मगध के राजा बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु ने देवदत्त का समर्थन किया। जो भी हो, देवदत्त अपने सभी प्रयासों में विफल रहे और कहा जाता है कि बाद में उन्होंने इस पर पश्चाताप किया जिसके उपरांत उन्हें दोबारा संघ में शामिल कर लिया गया।[2]

बुद्ध के व्यक्तिगत जीवन में एक महिला, महाप्रजापति गौतमी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे बुद्ध की निकट संबंधी, संभवतः उनकी मौसी थीं और वे गौतम की मां की तरह थीं क्योंकि उनकी मां का निधन उनके जन्म के कुछ ही दिन बाद हो गया था। महाप्रजापति ने ही बुद्ध को इस बात के लिए राजी किया था कि वे महिलाओं को संघ में स्थान दें। जब बुद्ध कपिलवस्तु में थे तब महाप्रजापति ने उनसे बार-बार आग्रह किया था कि वे उनको और अन्य महिलाओं को "घर से निकलकर बेघर जीवन में आने दें।" बुद्ध ने इससे इनकार कर दिया। तब महाप्रजापति ने अपने सिर के बाल काट दिए और कुछ अन्य शाक्य स्त्रियों के साथ संन्यासिन के वस्त्रों में वैशाली के लिए प्रस्थान किया। बुद्ध उस समय विशाल उपवन में ठहरे हुए थे। बुद्ध के संबंधी और विश्वासपात्र शिष्य आनंद ने महाप्रजापति को देखकर पूछा : "गौतमी ! तुम दुखी और विलाप करती हुई द्वार के बाहर क्यों खड़ी हो ? तुम्हारे पांवों में सूजन क्यों है और वे धूल से सने क्यों हैं ?" महाप्रजापति गौतमी ने बुद्ध से किया अपना अनुरोध दोहराया पर वे तब भी इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। फिर आनंद ने बुद्ध से पूछा कि क्या महिलाएं पवित्र जीवन के अयोग्य हैं। बुद्ध इससे सहमत थे कि महिलाएं अयोग्य नहीं हैं। आनंद ने उन्हें याद दिलाया कि नन्हें गौतम का

लालन-पालन गौतमी ने ही किया था। अंततः बुद्ध महिलाओं को संघ में शामिल करने पर राजी हो गए, बशर्ते वे कुछ कड़ी शर्तों और अनुशासन का पालन करें। इस बात का खंडन करना असंभव होगा कि बुद्ध के मन में, संघ में महिलाओं को पुरुषों के बराबर स्थान देने के संबंध में पूर्वाग्रह था। वे स्पष्टतः मठवासियों अथवा भिक्षुओं के नैतिक अनुशासन को लेकर चिंतित थे।[3]

बुद्ध की एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक भूमिका भी थी। कुछ हद तक इसका कारण यह था कि भारत में संत और मनीषी समझे जाने वाले व्यक्ति की भूमिका एकांतवासी से ज्यादा समझी जाती थी। इसके अलावा एक घुमंतू धर्म प्रचारक के रूप में काम करने के बुद्ध के प्रयासों ने उन्हें पूर्वोत्तर भारत में अत्यंत चर्चित बना दिया था। यह भी लगता है कि उनकी ख्याति उन क्षेत्रों से आगे फैल गयी थी जहां वे घूमते थे—गंगा-यमुना के संगम से लेकर हिमालय के छोर तक। उदाहरण के लिए, दक्षिण में गोदावरी नदी के तट से संन्यासियों का एक प्रतिनिधिमंडल बुद्ध के साथ विचार-विमर्श के लिए कोशाम्बी, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनगर, वैशाली और अंत में राजगृह तक गया। वैसे ये सारे शहर उत्तर (उत्तरपथ) के व्यापार मार्ग पर स्थित थे और व्यापारी तथा व्यवसायी उन आम लोगों के समूह का एक महत्वपूर्ण अंग बन गए थे जो बुद्ध के साथ जुड़ा हुआ महसूस करते थे। इन्हीं में लखपति व्यवसायी सुदत्त भी शामिल था जिसका उपनाम था अनाथपिंडिक यानी कि 'बेसहारा लोगों को भोजन देने वाला।' कहा जाता है कि उसने श्रावस्ती में राजा के पुत्र से एक उद्यान खरीदा था और उसका मूल्य पूरे उद्यान को सोने की मुहरों से भरकर चुकाया था। यह उद्यान जिसे जेत उद्यान या अनाथपिंडिक उद्यान कहा जाता था, बरसात के दिनों में बुद्ध का सबसे प्रिय आवास बन गया था। सिर्फ बड़े व्यवसायी ही नहीं बल्कि पूर्वोत्तर भारत के दो मुख्य राजा भी बुद्ध के अनुयायी बन गये थे। ये थे कोशल के राजा प्रसेनजित (प्रसेनदि) और मगध के राजा बिम्बसार। लिच्छवि और मल्ल आदिवासी क्षेत्रों के दो प्रमुख व्यक्ति भी बुद्ध के आध्यात्मिक प्रभाव में थे। लेकिन कई अन्य संतों और मनीषियों के विपरीत बुद्ध ने राजकाज में कोई भूमिका निभाने से साफ मना कर दिया।[4]

अन्य संतों और बुद्ध में सबसे बड़ा अंतर यह था कि बुद्ध अपने पास आने वाले सभी लोगों के साथ एक समान व्यवहार करते थे। इसका एक

प्लेट 6 : बुद्ध को एक व्यापारी का स्मरणीय उपहार

उदाहरण यह है कि जब कोशल के राजा प्रसेनजित ने बुद्ध से पूछा कि सांसारिक बंधनों से मुक्त सच्चे संत (अरहंत) की पहचान कैसे की जाए, तब बुद्ध ने कहा : "तुम्हारे लिए यह मुश्किल होगा राजन। तुम सांसारिक सुखों को पसंद करने वाले एक गृहस्थ हो, बनारस के चंदन की मोहक सुगंध वाले तुम्हारे शयनकक्ष में बच्चे भरे रहते हैं, तुम माला पहनते हो, इत्र लगाते हो और सोने-चांदी के उपहार लेते-देते हो। इस तरह के विषयों पर राय बना सकना तुम्हारे लिए कठिन होगा।" दूसरी ओर बिना हैसियत और महत्व के लोगों से बुद्ध उदार मन से और स्नेह के साथ बात करते थे। एक ग्वाला, नंदा, भिक्षुओं में शामिल होना चाहता था। बुद्ध ने उससे कहा : "जाओ पहले उन जानवरों को उनके मालिकों को सौंप दो जिन्होंने उन्हें देखभाल के लिए तुम्हें दिया है।" ग्वाले ने ऐसा ही किया। तब बुद्ध ने उसकी गंभीरता को देखते हुए उसे सम्मानित करने के लिए संघ में उसके प्रवेश के समारोह का व्यक्तिगत तौर पर संचालन किया। इसी तरह छोटी जाति के नाई उपालि और अभिनेता तथा मंच प्रबंधक तालपुत्तो का उच्च ब्राह्मणों की भांति संघ में स्वागत किया गया। सारिपुत्र और मोग्गल्लान उच्च कुलीन ब्राह्मण थे। प्रारंभिक दिनों में जब बुद्ध अपने संदेश के प्रचार-प्रसार के लिए यहां-वहां घूम रहे थे तब वे हर समाज के हर तरह के व्यक्ति से मिले। ऐसी ही एक कहानी है कि बुद्ध कुम्हार भग्गव से कैसे मिले। बुद्ध ने कहा : "यदि तुम्हें ठीक लगे भग्गव, तो मैं एक रात तुम्हारी झोपड़ी में बिताऊंगा।" भग्गव का उत्तर था : "मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है लेकिन मुझे इससे पहले दूसरे बटोही से पूछना पड़ेगा जो बरसात के मौसम में यहां रुका हुआ है।" अनुमति मिलने के बाद बुद्ध ने झोपड़ी के एक कोने में फूस बिछाया और बैठ गए। बुद्ध से बात करते हुए दूसरे बटोही ने कहा : "मैं शाक्य गौतम की तलाश में निकला हूं जिनके संबंध में मैंने बहुत अच्छी बातें सुनी हैं।" बुद्ध ने बटोही को यह बताए बिना कि उसकी तलाश खत्म हो गयी है, उसे अपने उपदेशों की प्रमुख बातें बतायीं।[5]

बुद्ध ने जन्म, जाति या व्यवसाय के आधार पर समाज में किसी व्यक्ति का दर्जा तय करने की पारंपरिक भारतीय प्रणाली की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। बुद्ध के काल में उत्तर भारत में समाज व्यवस्था बदल रही थी। ऐसा लगता है कि उस समय जनसंख्या बढ़ रही थी। जंगल काटकर खेत बनाए जा रहे थे, इसके लिए लोहे से बने कृषि उपकरणों का इस्तेमाल

बढ़ रहा था और जंगलों में रहने वाली कई आदिवासी जातियां खेतीबाड़ी करने लगी थीं। व्यापार बढ़ने की वजह से कस्बों और नगरों का आकार और उनकी आबादी भी बढ़ रही थी। सामाजिक परिवर्तन के इस माहौल में बुद्ध के उपदेशों का व्यापक असर हुआ। उनकी दृष्टि में पंडितों और पुजारियों द्वारा किए जाने वाले धार्मिक अनुष्ठानों तथा कर्मकांड का कोई मूल्य नहीं था। उनके लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि आप अपना जीवन कैसे जीते हैं। इसलिए धार्मिक अनुष्ठानों के औचित्य, कर्मकांड की शुद्धता या अशुद्धि पर प्रश्नचिह्न लगाए जाने लगे और इसी वजह से, परोक्ष रूप से जाति व्यवस्था पर भी उंगलियां उठायी गयीं। आम लोगों के सामने यह तर्क इसी तरह रखा जाता था, लेकिन संघ के अंदर और मठवासियों के बीच जाति पर सीधा प्रहार किया जाता था। उनके एक उद्धरण में इसका एक सुंदर उल्लेख मिलता है जिसमें बुद्ध पांच प्रमुख नदियों का नाम लेते हुए कहते हैं : "ठीक उसी तरह जैसे विशाल समुद्र में मिल जाने पर नदियों का नाम और अस्तित्व मिट जाता है वैसे ही बुद्ध का अनुयायी बनकर भिक्षुओं के संघ में शामिल होने पर जातियां और वंशावलियां समाप्त हो जाती हैं।"[6]

एक अन्य मामले में बुद्ध के विचार काफी क्रांतिकारी थे। वे लोगों से आम बोलचाल की भाषा में बात करते थे और बाद में उनके उपदेशों और उनसे जुड़ी किंवदंतियों को भी उसी भाषा में लिखा गया। यह भाषा स्थानीय भाषा थी जिसे मगधी कहा जाता था और वह बाद में पालि बन गयी। बुद्ध से पहले भारतीय धार्मिक साहित्य, विद्वानों की भाषा संस्कृत में था और उसे विद्वान ही समझते थे। दूसरी ओर बुद्ध थे जिनके उपदेश और उनसे जुड़ी कथाएं, उनका संदेश तथा दर्शन आम लोगों तक इस तरह पहुंचा रहे थे जिसे लोग किसी विद्वान या पंडित की मदद के बिना समझ सकते थे।[7]

बुद्ध के उपदेशों में सहज बुद्धिसंगत तर्क होते थे जिन्होंने आम लोगों को अवश्य प्रभावित किया होगा। वे दर्शन में अटकलों से बचते थे। उनके काल में पंडित, विद्वान और एकांतिक संन्यासी प्रायः अमूर्त प्रश्नों पर चर्चा करते थे जिनका वास्तविकता से कोई सीधा प्रश्न नहीं होता था—यह बात आज भी देखने को मिलती है। बुद्ध ऐसे सभी प्रश्नों को असंगत बताकर किनारे कर दिया करते थे। कभी-कभी इस तरह के सवालों पर वे चुप्पी
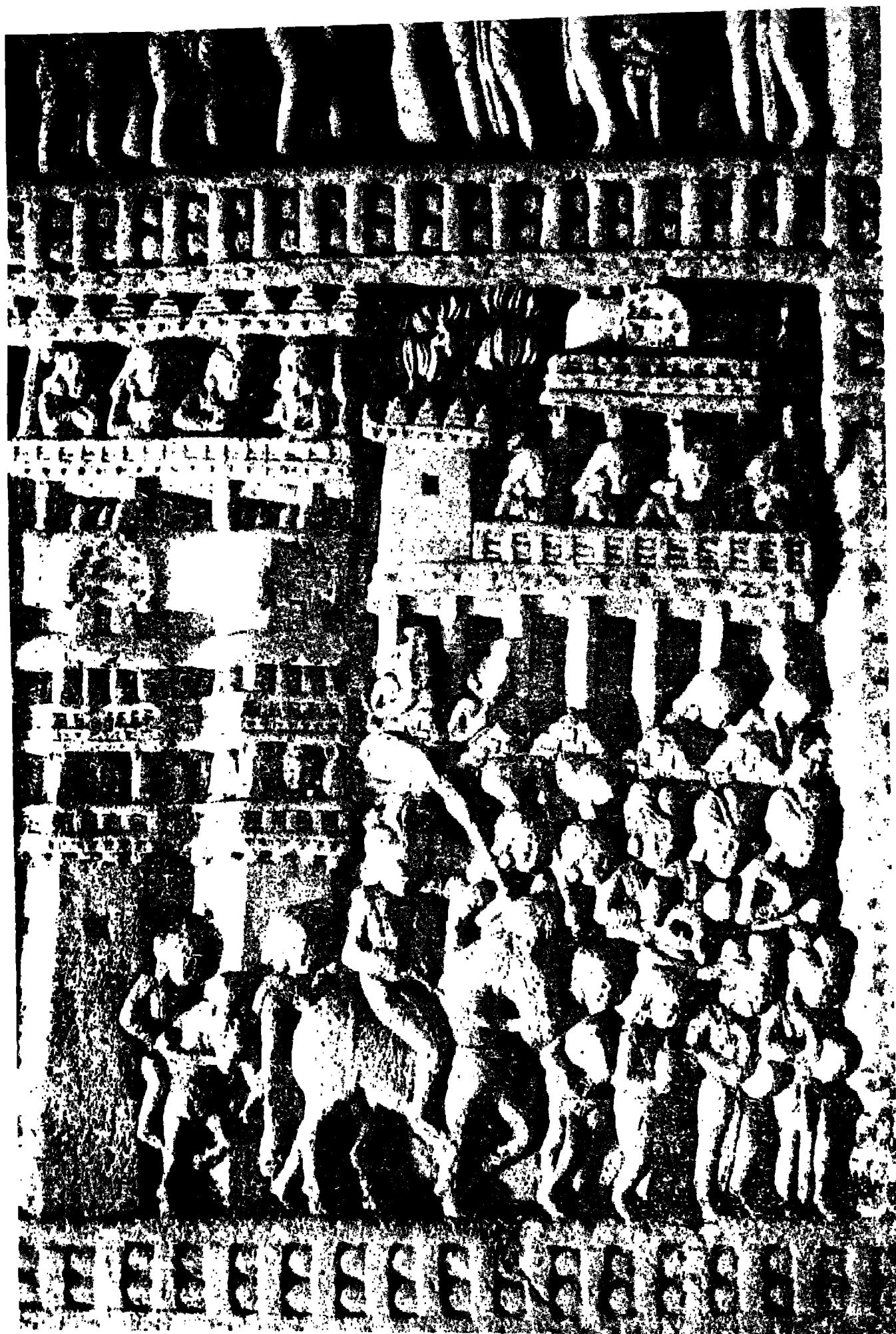
प्लेट 7 : बुद्ध के स्वागत के लिए राजसी यात्रा

लगा जाते थे और कभी उनका मजाक उड़ाते थे। एक बार जब बुद्ध श्रावस्ती में थे तब कई विद्वान और संन्यासी वहां भिक्षा मांगने आए लेकिन उनके परस्पर विरोधी विचारों के कारण उनके बीच ऊंची आवाज में बहस हुई जिसमें अपशब्दों का इस्तेमाल किया गया। बुद्ध के शिष्यों ने यह विवाद देखा जिसमें बहस के मुद्दे थे कि यह संसार शाश्वत है या नहीं, और उसकी कोई सीमा है या नहीं। बुद्ध के शिष्यों ने वहां से लौट कर उन्हें पूरी कहानी सुनाई जिस पर बुद्ध ने एक कहानी सुनाकर टिप्पणी की। यह चर्चित कहानी उन दृष्टिहीन लोगों की गाथा है जिन्होंने हाथ से छूकर हाथी की पहचान करने की कोशिश की थी। एक दृष्टिहीन व्यक्ति ने हाथी के पांव छुए थे और उसके हिसाब से सत्य यह था कि हाथी खंभे की तरह है। दूसरे के लिए वह घड़े की तरह था क्योंकि उसने हाथी का माथा छुआ था। एक अन्य को लगा कि हाथी हल की तरह है क्योंकि उसने हाथी के दांत छुए। बाकी ने भी अपने-अपने ढंग से सत्य बताया। बुद्ध की कथा का अर्थ यह था कि हरेक ने पूर्ण सत्य का केवल एक हिस्सा देखा था। बुद्ध ने कहा : "यही बात उन सम्प्रदायों के लिए भी सच है जो आपस में लड़ते रहते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि वे विद्वान हैं और सब कुछ जानते हैं।"[8]

बुद्ध अपने कुछ प्रवचनों में सहज तर्क से आगे निकलकर दर्शन में बुद्धिवाद तक जाते हैं। वे कहते हैं : "आंखें और जो वे देखती हैं, कान और आवाज, नाक और महक, जीभ और स्वाद, शरीर और संपर्क, मस्तिष्क और विचार—सब कुछ यही है।" बुद्ध यह भी कहते हैं कि जो इस समग्र को खारिज करते हैं और किसी अन्य समग्र की बात करते हैं, वे लोग तर्क करने पर अपना पक्ष साबित नहीं कर सकते। एक अन्य स्थान पर बुद्ध बुढ़ापे, क्षय, पुनर्जन्म से मुक्त इस दुनिया से बाहर किसी स्थान से संबंधित सवाल पर कहते हैं, "इस दुनिया से अलग कोई दुनिया नहीं है।" कहने का अर्थ यह है कि उन्होंने अन्य धर्मों के संस्थापकों की तरह जीवन के बाद स्वर्ग का आश्वासन नहीं दिया। वैसे, यह सही है कि बौद्ध धर्मग्रंथों में कुछ स्थानों पर लगभग जादुई शक्तियों और अलौकिक जीवों का उल्लेख मिलता है और कहा जाता है कि यह उल्लेख स्वयं बुद्ध ने किया था। यह संभव है कि इस तरह के बयानों से, यदि वे सचमुच बुद्ध के ही बयान हैं तो वे उस काल के अपने श्रोताओं को, उनके परिचित प्रतीकों और संकेतों के माध्यम से, अपना संदेश देने का प्रयास कर रहे होंगे।[9]

बुद्ध ने अपने मठवासियों का संघ बनाने और उसे दृढ़ आधार देने में काफी परिश्रम किया। उन्होंने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए संघ की गतिविधियों और संगठन में मठवासियों की सभा को महत्वपूर्ण स्थान दिया। बुद्ध निश्चित रूप से वृज्जि (विज्जी) आदिवासी संघ परंपरा से परिचित थे जिसमें लिच्छवि शामिल थे। इसमें आदिवासियों के प्रतिनिधियों या विभिन्न वंशों के प्रमुखों की एक सभा होती थी जिसका मुख्यालय राजधानी में होता था और यही सभा राजकाज से संबंधित मामलों में फैसले करती थी। हो सकता है बुद्ध के शाक्य वंश में भी ऐसी ही प्रणाली रही हो। वृज्जि के बारे में बुद्ध का कहना था : "जब तक उनकी सभा की बैठकें होती रहेंगी तब तक उनके कल्याण की आशा आप कर सकते हैं।" यही बात उन्होंने 'भिक्षुओं की सभा' के बारे में कही। यह एक प्रकार की लोकतांत्रिक भावना थी जिसमें बुद्ध की सलाह पर इतना संशोधन किया गया था कि संघ में वृद्ध लोगों को सम्मान दिया जाए। बुद्ध के निधन के बाद लंबे अरसे तक धर्म से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्नों पर बौद्ध भिक्षु-सभाओं और सम्मेलनों में फैसले लिए जाते रहे।[10]

बुद्ध ने संघ में प्रवेश के नियम और शर्तें स्वयं निर्धारित की थीं और प्रवेश के समय ली जाने वाली शपथ का विवरण भी खुद तैयार किया था : "मैं बुद्ध की शरण में जाता हूं (बुद्धं शरणं गच्छामि), मैं धर्म की शरण में जाता हूं, (धम्मं शरणं गच्छामि), मैं संघ की शरण में जाता हूं (संघं शरणं गच्छामि)।" संघ के नियमों में नियमित सभा के आयोजन, भिक्षाटन के लिए बाहर निकलने, शिक्षा देने, बरसात के मौसम में निर्धारित स्थानों पर ठहरने और यहां तक कि दैनिक शिष्टाचार के तरीकों का भी प्रावधान किया गया था। उदाहरण के लिए : एक भिक्षु मठ या आवास पर पहुंचने पर "अपनी चप्पलें उतार दे, उन्हें नीचे रखे, उन्हें एक दूसरे पर पटककर झाड़े, फिर उन्हें ले जाए, अपना छाता सावधानी से रखे और तब बिना किसी हड़बड़ी के, सावधानीपूर्वक आवास में प्रवेश करे।" उसके बाद अपने पांव धोने, चप्पलें धोने, मठ के वरिष्ठ भिक्षुओं का अभिवादन करने, संघ के सभागार का और सभा के समय का पता लगाने जैसे नियम थे। आमतौर पर सभी मठवासियों को बुद्ध का निर्देश था कि वे समय गवांने, गप्पबाजी करने, कुसंगति और विलासिता के प्रति मानसिक रुझान से बचें। यह आवश्यक समझा जाता था कि मठवासी की छवि शांत, प्रकृतिस्थ और धीर गंभीर हो। संभवतः देश

की संस्कृति का ख्याल करते हुए बुद्ध ने ये निमय बनाए थे ताकि संघ में व्यवस्था सुनिश्चित की जा सके। हम जानते हैं कि बुद्ध के जीवन काल में ही कई लोगों को नियमों के उल्लंघन के कारण संघ से निष्कासित किया गया था।[11]

अब तक आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि बुद्ध लोगों को जो सिखाने का प्रयास कर रहे थे उसका अर्थ था लोगों के सोचने के ढंग और जीवन-पद्धति में भारी परिवर्तन। बुद्ध निश्चित रूप से यह समझते थे कि यह काम कितना बड़ा है। उन्होंने एक बार स्वयं यह संदेह व्यक्त किया था कि वे यह जिम्मेदारी उठाएं या नहीं क्योंकि "लोग जहां अटकते हैं, वहीं अटके रह जाते हैं।" लेकिन बुद्ध आम आदमी नहीं थे और जल्दी ही तार्किक निराशावादिता पर उनके हृदय की करुणा और संवेदनशीलता ने विजय प्राप्त कर ली। उन्होंने सारनाथ में इन्हीं विचारों के बारे में बाद में कहा कि उन्हें पता था कि संसार में "ऐसे लोग हैं जिनकी आंखों पर धूल का मामूली परदा है और ऐसे भी जिनकी आंखें पूरी तरह ढंकी हुई हैं, तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोग भी हैं और वे भी जिनके पास बुद्धि है ही नहीं; अच्छे स्वभाव के लोग हैं और बुरे स्वभाव के भी..." इसके बावजूद बुद्ध ने सबको शिक्षा देने का निर्णय किया क्योंकि वे संसार को करुणा की आंखों से या उनके शब्दों में "बुद्ध की आंखों से" देखते थे।[12]

4

निर्वाण

बुद्ध के बुढ़ापे के समय उनके कुछ शिष्य उनसे दूर रहकर मिशनरियों की तरह उनके संदेश का प्रचार कर रहे थे। पहले के शिष्यों में से कुछ की मृत्यु हो चुकी थी। ऐसा लगता है कि अपनी मृत्यु के समय बुद्ध बिल्कुल अकेले थे। उनका पुत्र, राहुल एक समय उनके पास भिक्षु की तरह रहता था, लेकिन उन दिनों अन्य शिष्यों की तरह वह भी प्रचार कार्य में लगा हुआ था। बुद्ध ने अपने बुढ़ापे का ज्यादातर समय श्रावस्ती (सावत्थी) में बिताया। मृत्यु के समय केवल उनका सबसे विश्वासपात्र संबंधी एवं अनुयायी आनंद उनके पास था। बुद्ध जब अंतिम बार वैशाली से कुशीनगर की यात्रा पर गए तब भी सिर्फ आनंद उनके साथ था। कुशीनगर में जब बुद्ध की मृत्यु हुई तब न तो राहुल और न ही उनका कोई अन्य प्रिय शिष्य वहां मौजूद था। करीब 500 अनुयायी उनकी मरणासन्न अवस्था में वहां आए। अंतिम संस्कार के समय और भी बहुत से लोग उपस्थित थे। लेकिन जीवन के आखिरी दिनों में उनके साथ कोई नहीं था।[1]

श्रावस्ती में एक दिन धूप में बैठे-बैठे अपनी पीठ सेंकते हुए बुद्ध ने अपनी मृत्यु के बारे में बात की। उनके संबंधी आनंद ने थोड़ी ही देर पहले उनकी मालिश की थी और उसका कहना था कि बुद्ध की त्वचा ढीली हो गयी थी और उस पर झुर्रियां पड़ गयी थीं; उनका रंग पहले जैसा साफ नहीं रह गया था और उनके हाथ-पांव पतले हो गए थे; और यह कि उनकी इंद्रियां शिथिल हो गयी थीं और उनमें पहले जैसी चेतना नहीं रह गयी थी। बुद्ध ने कहा : "शरीर का क्षय यौवन में ही निहित है, शरीर की बीमारी स्वास्थ्य में निहित है और जीवन के बीच में हम मृत्यु के साथ होते हैं। मृत्यु

से कोई नहीं बच सकता।"[2]

बुद्ध के शिष्यों ने उनकी मृत्यु और उसके बाद की स्थिति की चर्चा पहले ही शुरू कर दी थी। बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों–सारिपुत्र और काश्यप के बीच बनारस के निकट इसिपाटन में हुई बातचीत का एक रोचक विवरण मिलता है। "मित्र सारिपुत्र, अब क्या होगा ? क्या बुद्ध मृत्यु के बाद भी जीवित रहेंगे ?" "बुद्ध ने इस संबंध में एक शब्द भी नहीं कहा है मित्र काश्यप...यह ऐसा सवाल नहीं है जिसका कोई लाभ हो। इसका पवित्र जीवन के सिद्धांतों से भी कोई सरोकार नहीं है...इसीलिए बुद्ध ने इस संबंध में कुछ नहीं कहा है।"[3]

कहा जाता है कि बुद्ध ने अपनी मृत्यु से तीन महीने पहले भिक्षुओं और मठवासियों को बुलाकर कहा था : "मैं बूढ़ा हो गया हूं और मेरे दिन अब गिने चुने बचे हैं। मुझे जल्दी ही जाना होगा, पूरी तरह से।" मठवासियों में विषाद छा गया।[4]

संभवतः इसी समय आनंद ने बुद्ध से पूछा कि क्या वे अपनी मृत्यु से पूर्व मठवासियों और भिक्षुओं के लिए कोई उद्घोषणा करना और निर्देश देना चाहेंगे ? इस सवाल का निहितार्थ यह था कि बुद्ध के बाद उनका उत्तराधिकारी कौन होगा ? बुद्ध का उत्तर बहुत मानवीय था : "वे मुझसे क्या चाहते हैं ? मैंने उन्हें बता दिया है कि सही मार्ग कौन सा है। मैं मुट्ठी बंद रखने वाला गुरु नहीं रहा हूं। मैंने वह सब दे दिया है जो मैं जानता था। अगर कोई ऐसा है जो सोचता है "मैं नेतृत्व करूंगा" या "सब मेरे ऊपर निर्भर करता है" तो उसे खुलकर बोलना चाहिए। जहां तक मेरा प्रश्न है, "मैं बहुत बूढ़ा हो चूका हूं, टूट चुका हूं और अपनी यात्रा के अंत के करीब पहुंच गया हूं।" यही वह अवसर था जब बुद्ध ने कहा कि उनकी आयु 80 वर्ष है और इसी आधार पर उनकी जन्म तिथि की गणना की गयी।[5]

वैशाली से कुशीनगर की पैदल यात्रा के समय बुद्ध और आनंद पावा नाम के एक गांव में आम के एक बाग में रुके थे। वहां लुहार जाति का चुंड रहता था। दीन हीन चुंड उस काल की समाज व्यवस्था में बहुत नीचे आता था। उसने बुद्ध को अन्य चीजों के साथ सुअर का मांस खाने को दिया जो सड़ गया था। या हो सकता है वह खुम्बी रही हो। किताबों में जिस तरह का ब्यौरा है उससे यह स्पष्ट नहीं है। वह जो भी था बुद्ध ने

उसे खाया क्योंकि वह उन्हें भिक्षा के रूप में मिला था। खाने के बाद उन्हें लगा कि वह पदार्थ किसी के भोजन के योग्य नहीं है और उन्होंने अपने आतिथेय से बचे हुए भोजन को जमीन में गाड़ देने को कहा।[6]

भोजन के उपरांत बुद्ध बहुत बीमार हो गए। जब दर्द थोड़ा कम हुआ तो बुद्ध ने कहा कि वह कुशीनगर की ओर फिर पैदल चलना चाहेंगे। रास्ते में उन्हें बेतहाशा प्यास लगती रही और वे आनंद से बार-बार पानी मांगते रहे। सामान्यतः यह अतिसार के कारण पानी की कमी की वजह से होता है। वे दानों कुशीनगर के निकट एक उपवन के पास पहुंचे। बुद्ध वहां लेट गए और वहीं अंतिम विश्राम किया। वे शाल के हरे-भरे वृक्षों को देखकर और उपवन में हवा का संगीत सुनकर खुश होते रहे।[7]

यह समझते हुए कि उनका अंत निकट है, आनंद ने बुद्ध से उनके अंतिम संस्कार के बारे में पूछा। बुद्ध का जवाब था : "तुम शरीर के संस्कार के संबंध में चिंता मत करो। वह करने की कोशिश करो जो तुम्हारे लिए अच्छा है।"[8]

बुद्ध के उस विश्वासपात्र शिष्य पर दुख के बादल छाने लगे। बुद्ध के अनुयायी वहां एकत्र होने लगे। बुद्ध ने उनमें से कुछ से कहा कि वे आनंद को बुलाकर लाएं और फिर उन्होंने कहा : "बहुत हो गया आनंद। दुखी होना छोड़ो और विलाप मत करो। क्या मैंने तुम्हें पहले ही नहीं बताया था कि जो भी तुम्हें प्रिय है, वह बदल जाएगा, चला जाएगा और वह जो आज है, वह वही नहीं रहेगा।" ?[9]

जैसे-जैसे अंत निकट आ रहा था, बुद्ध अपने बीते हुए जीवन को याद कर रहे थे। एक एकांतवासी यायावर, सुभद्द से उन्होंने पचास साल पहले घर त्यागने की बात कही, जब उनकी आयु 29 वर्ष थी। आनंद से बुद्ध ने लुम्बिनी की चर्चा की जहां उनका जन्म हुआ था; बोधिवृक्ष का उल्लेख किया जहां उन्हें सत्य मार्ग मिला था और उस उपदेश का जिक्र किया जो उन्होंने अपने पहले शिष्यों को दिया था। उन्होंने अपने जीवन को मोड़ देने वाली इन सभी घटनाओं की चर्चा की।[10]

मौत का सन्नाटा छा जाने से ठीक पहले बुद्ध ने वहां एकत्र हुए मठवासियों से कहा : "बंधुओ ! अगर तुम्हारे मन में बुद्ध या सत्य मार्ग के संबंध में संदेह या प्रश्न हैं तो पूछो।" सभी मठवासी चुप रहे। यह चुप्पी उसी तरह बनी रही, हालांकि बुद्ध ने अपने शब्द दूसरी बार और फिर तीसरी

प्लेट 8 : बुद्ध का निधन

बार दोहराये। बुद्ध ने फिर कहा : "बंधुओ ! संभवतः गुरु के प्रति श्रद्धा के कारण तुम प्रश्न पूछने से हिचक रहे हो; मुझसे उस तरह बात करो जैसे एक मित्र दूसरे मित्र से करता है।" मठवासी फिर भी मौन रहे। इसके बावजूद कि वे एक ऐसे व्यक्ति के अनुयायी थे जिसने उस काल की सर्वमान्य धारणाओं को प्रश्नों के द्वारा उलट-पुलट दिया था। मठवासियों से अपने अंतिम शब्दों में बुद्ध ने उन्हें परितोष और ढील बरतने के विरुद्ध चेतावनी दी : "ध्यान रखना और हमेशा चौकस रहना।"[11]

बुद्ध का सबसे अविस्मरणीय संदेश उनके अंतिम शब्दों में निहित था। प्रबुद्ध आत्मा के रूप में पहचाने जाने वाले बुद्ध ने कहा : "इस तरह जियो जैसे प्रकाश तुम्हारे भीतर है, इसके अतिरिक्त कोई प्रकाश नहीं है।"

5

खोज

एक ऐसे व्यक्ति के जीवन और उपदेशों की आज क्या प्रासंगिकता है जिसकी मृत्यु ढाई हजार वर्ष पहले हो गयी थी ? इस प्रश्न का उत्तर हर आदमी के लिए अलग-अलग हो सकता है। हममें से हर आदमी को सोचना होगा कि इसका उत्तर 'हां' में है या 'ना' में। बुद्ध ठीक यही चाहते थे और वे इसे पसंद करते यदि उनके श्रोताओं ने यह प्रश्न उठाया होता। यह बात बुद्ध के वचनों से एकदम स्पष्ट हो जाती है जिनमें उन्होंने कहा था, "तुम्हें प्रकाश के लिए अपने अंदर देखना होगा।" क्योंकि जीवन जो प्रश्न उठाता है उनका उत्तर तुम्हारे अंदर ही होता है। कुछ घटनाएं भी हैं जिनसे बुद्ध के इसी दृष्टिकोण का पता चलता है। कोशल के राजा प्रसेनजित (पसेनदि) से लंबी वार्ता के बाद बुद्ध ने उन्हें सलाह दी, "वही करो जो तुम्हें अच्छा लगता है।" कालाम वंश के एक कुलीन व्यक्ति से उन्होंने कहा : "केवल सुनी-सुनायी बातों पर मत जाओ और न ही उस आधार पर चलो जो औरों ने कहा है। पारंपरिक शिक्षा के आधिकारिक सिद्धांतों का भी अंधानुकरण मत करो।" बुद्ध चाहते थे कि लोग अपने विवेक के आधार पर, अपने आंतरिक प्रकाश और अच्छे या बुरे परिणामों के अपने अनुभव का इस्तेमाल करें और इसी आधार पर दर्शन पर अमल करें। इस दृष्टि से बुद्ध कई अन्य धर्मगुरुओं से अलग थे क्योंकि वे अंतिम फैसला प्रश्नकर्ता पर ही छोड़ देते थे।[1]

आधुनिक जीवन ने व्यक्ति को अलग-थलग कर दिया है। ऐसे में वैयक्तिक दर्शन देने का बुद्ध का प्रयास एक नया अर्थ ग्रहण कर लेता है क्योंकि वह व्यक्ति को अपने फैसले के आधार पर सोचने और जीने की

राह दिखाता है। पुराने जमाने में परिवार और कुटुंब के बंधन तमाम लोगों को एक साथ रखते थे। गांव और शहर के आसपास के इलाके भी हर पुरुष और स्त्री को अपना हिस्सा समझते थे। हर व्यक्ति की रोजमर्रा की अपनी कार्रवाइयों, गतिविधियों और अनुभवों से उसके दिमाग में अपनत्व की भावना बढ़ती थी। यह बात उस काल में सही थी, लेकिन अब नहीं है। बुद्ध उन सभी पुरुषों और स्त्रियों के एकाकी मन को सीधे संबोधित करते हैं जिनमें समुदाय, चर्च या अन्य धार्मिक निकायों के साथ अपनत्व की भावना का सर्वथा अभाव है।

एक बार बुद्ध के शिष्य मोग्गल्लान ने उनसे पूछा : "क्या बुद्ध के सभी अनुयायी संसार के दुखों से निश्चित रूप से मुक्त हो जाएंगे ?" बुद्ध ने पुरोहित जाति के मोग्गल्लान को जवाब दिया : "क्या तुम राजगृह (राजगह) का रास्ता जानते हो ?" मोग्गल्लान का उत्तर हां में था। बुद्ध ने अगला सवाल पूछा कि क्या तुम किसी को वह रास्ता बता सकते हो ? मोग्गलान ने कहा कि बिल्कुल, यह राजगृह की सड़क है। इस पर चलेंगे तो कुछ दूर चलकर अमुक गांव आएगा और आगे चलकर एक उपवन मिलेगा जिसका प्राकृतिक दृश्य फलां तरह का होगा...आदि...आदि। बुद्ध ने कहा : "तुम्हारे बताए रास्ते पर चलकर संभव है एक राही राजगृह पहुंच जाए, लेकिन हो सकता है कि कोई दूसरा रास्ता भटक जाए और वहां न पहुंच सके।" मोग्गल्लान ने कहा : "क्या यह भी मेरा काम है, गुरुदेव ? मैंने तो बस रास्ता दिखाया।" बुद्ध : "मैं भी केवल रास्ता दिखाता हूं। मेरे कुछ अनुयायी पहुंच जाते हैं और कुछ नहीं पहुंचते। गुरु का काम सिर्फ रास्ता दिखाना है।"[2]

इस वार्तालाप का निहितार्थ यह है कि यह अलग-अलग लोगों पर निर्भर करता है कि वे बुद्ध के दिखाए मार्ग पर कितनी तेजी से और कितनी दूर तक जा सकते हैं। कई अन्य धर्मगुरुओं के विपरीत बुद्ध ने अपने अनुयायियों को स्वर्ग के सपने नहीं दिखाए। उन्होंने यह आश्वासन भी नहीं दिया कि वे सब अपने लक्ष्य तक पहुंच जाएंगे। बुद्ध के दृष्टिकोण की खास बात यह थी कि वे मार्गदर्शन चाहने वालों को सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित करते थे। सिर्फ अनुयायी होना काफी नहीं था बल्कि इसके लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता थी।

इस प्रकार बुद्ध ने खोज को केंद्रीय विषय-वस्तु बना दिया। उनका

जीवन उन प्रश्नों के उत्तर की खोज था जो कई अन्य धर्मों के संस्थापकों ने उठाए थे। बुद्ध उनके विपरीत एक अनिच्छुक भविष्यवक्ता थे। बुद्ध अक्सर उनसे पूछे गए सवालों के जवाब में चुप रह जाते थे। उन्हें इस बात पर भी संदेह था कि जो मार्ग उन्होंने दिखाया है, क्या वह स्थायी है; क्या लोग उस पर चलेंगे। एक बार जब बुद्ध बांस के एक झुरमुट में, किम्बली नगर में रह रहे थे तो उनसे एक मठवासी, किम्बिल ने यही सवाल पूछा : "क्या धम्म (धर्म) उसके संस्थापक की मृत्यु के बाद भी रहेगा ?" बुद्ध के उत्तर से लगता है कि उन्हें स्वयं भी संदेह था कि धम्म उनकी मत्यु के पश्चात अधिक दिन चल सकेगा। उन्हें संदेह इस बात पर भी था कि मठवासी भाई-बहन और आम पुरुष तथा स्त्रियां बाद में गुरु के शब्दों पर अमल करेंगे और यह भी कि क्या भिक्षु और भिक्षुणियां मठ व्यवस्था और धम्म के सिद्धांतों का पालन करेंगे। बुद्ध ने यह दावा नहीं किया कि उनका धम्म अनंत काल तक चलेगा, जो दावा अन्य धर्मों और सम्प्रदायों के संस्थापक आमतौर पर करते हैं। बुद्ध तो यहां तक मानते थे कि धम्म सीखने का अवसर न पा सकने वाले कुछ लोग, संभव है "जीवन की वह पद्धति चुन लें जो नेक कार्यों के लिए सर्वोत्कृष्ट है।" दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिन्होंने बुद्ध के मार्ग के बारे में सब कुछ सुना हो पर वे इस पर अमल न करें।[3]

बुद्ध का दृष्टिकोण बहुत व्यावहारिक था जो कई दृष्टियों से काफी आधुनिक है। वे शब्दों को तोड़-मरोड़कर विस्तृत धर्मविज्ञान या धर्मशास्त्र नहीं गढ़ते थे। उनकी भाषा व्यावहारिक, बोलचाल की भाषा होती थी और उनकी शब्दावली तथा मुहावरे योद्धा वंश के मुहावरे थे जिससे उनका संबंध था। उदाहरण के लिए एक बार श्रावस्ती नगर में उनके एक शिष्य, मालुंक्य पुत्र, ने पूछा : "यह संसार शाश्वत है या नहीं ? यह संसार सीमाबद्ध है या नहीं ? क्या जीवन और शारीरिक-सांसारिक अस्तित्व एक ही है ? क्या बुद्ध मृत्यु से परे हैं ?" उसका कहना था कि इन प्रश्नों का उत्तर न मिलने तक बुद्ध का कोई शिष्य उनके बताए मार्ग पर क्यों चले ? बुद्ध से ये सवाल पूछे गए। उन्होंने इन सभी प्रश्नों को अनुत्तरित छोड़ दिया और जवाब में एक नीति कथा सुनाई : "मालुंक्य पुत्र ! मान लो किसी व्यक्ति के शरीर में विष बुझा तीर लग जाए और उसके संबंधी चिकित्सक को बुलाएं। अब सोचो कि अगर तीर से घायल व्यक्ति कहे कि यह तीर तब तक उसके शरीर

से नहीं निकाला जाना चाहिए जब तक कि उसे यह पता न चल जाए कि किस आदमी ने तीर चलाया, जब तक उसका नाम और कुल न पता लगे; जब तक ज्ञात न हो कि उसने तीर चलाने के लिए लंबे धनुष का इस्तेमाल किया या चाप का; जब तक यह न मालूम हो कि उसकी प्रत्यंचा किस चीज की बनी थी और तीर किस प्रकार का था और तीर पर लगे पंखों का पता न चले; जब तक यह न पता चल जाए कि तीर का अग्रभाग भोथरा था, धारदार था या कंटीले सिर वाला था। अब सोचो, हो सकता है कि ये सारी बातें पता ही न चल सकें और इस बीच उस आदमी की मृत्यु हो जाए। ठीक इसी तरह, उन तमाम चीजों के बारे में परेशान होने का कोई लाभ नहीं है जो जीवन जीने के ढंग से संबंधित नहीं हैं। मेरी चिंता का विषय सिर्फ जीवन की पीड़ा और उससे मुक्ति पाने का मार्ग है।''[4]

बुद्ध स्वभावतः अपनी तुलना रोगी का इलाज कर रहे चिकित्सक से करते थे। जब वे लोगों को गलती करते और कष्ट सहते देखते थे तो वे उसकी तुलना बीमारी से करते थे : ''मैं वैद्य और शल्य चिकित्सक हूं जिसके मुकाबले का कोई दूसरा है ही नहीं।'' यह बात उन्होंने राजगृह के एक उद्यान के उस हिस्से में कही थी जहां गिलहरियों को दाना डाला जाता था। बुद्ध उसी उद्यान में ठहरे हुए थे। गंभीर रूप से बीमार एक व्यक्ति उनसे मिलना चाहता था और बुद्ध ने उससे कहा, ''बीमार के इलाज के लिए शारीरिक रूप से बुद्ध की उपस्थिति नहीं बल्कि वह संदेश मायने रखता है जो मैंने दिया है।''[5]

व्यावहारिकता के प्रति यही नैसर्गिक प्रवृत्ति बुद्ध की उस सलाह में भी दिखाई देती है जो उन्होंने अतिसंयम और इंद्रिय सुख में डूब जाने के बीच मध्यमार्ग अपनाने के रूप में दी थी। एक समय ऐसा भी था जब बुद्ध ने स्वयं अतिसंयम का पालन किया था—खुद को भोजन, वस्त्र और आवास से वंचित रखा था। उनका कहना था कि वह तप में अन्य लोगों को पीछे छोड़ देना चाहते थे, सारी सुख सुविधाएं त्याग कर एकाकी जीवन बिताना चाहते थे। लेकिन तभी उनके मन में यह विचार आया कि क्या यही ज्ञान का मार्ग है ? ''मैं इस सहज स्थिति से क्यों डरता हूं जिसमें ऐंद्रिक इच्छाओं और इस दयनीय स्थिति दोनों से मुक्ति मिल सके।'' बुद्ध इसी प्रक्रिया में सादे जीवन के आदर्श तक पहुंचे जहां विलासिता और वंचना की अति से बचा जा सकता था। अपने मठवासियों के लिए उनका निर्देश था कि वे

प्लेट 9 : बुद्ध की आराधना

सर्दी, गर्मी और डंक मारने वाले कीड़ों से बचने के लिए वस्त्र धारण करें, भोजन उतना ही करें जितना शरीर को चलाने के लिए आवश्यक हो, मठों में रहने की व्यवस्था हो और दवाएं हों ताकि बीमारी को दूर रखा जा सके। संक्षेप में उनका आदर्श था अति की वर्जना।[6]

आज के युग में यह संदेश हमारे लिए विशेष रूप से अर्थपूर्ण हो जाता है और एक ऐसे कारण से जिसकी कल्पना संभवतः बुद्ध ने भी नहीं की होगी। वर्तमान विश्व का एक बड़ा हिस्सा उपभोक्तावाद का शिकार है। इस शब्द की रचना आज की उस विशाल जनसंख्या की मानसिक स्थिति का खाका खींचने के लिए की गयी जो हर चीज खरीदना, रखना और इस्तेमाल करना चाहती है, और उपभोग करने की उसकी इच्छा समाप्त ही नहीं होती। इससे उपभोग की होड़ बढ़ी है जिसमें हर व्यक्ति अपने पड़ोसी से आगे निकल जाना चाहता है ताकि वह और अधिक उपभोग कर सके। यदि इसमें नैतिकता का पहलू छोड़ दिया जाए तब भी उपभोग की इस सनक का सीधा भौतिक असर होता है। विश्व पर्यावरण और संसाधन असीमित उपभोग को थाम कर नहीं रख सकते। इससे प्रकृति का इतना नुकसान होता है कि कुछ समय बाद पृथ्वी या उसके कुछ हिस्से रहने लायक नहीं रह जाएंगे। विज्ञान ने अब हमें इसके खतरों से आगाह कर दिया है। विज्ञान की यह भविष्यवाणियां बुद्ध के जीवनकाल में उपलब्ध नहीं थीं। लेकिन नैतिकता के दृष्टिकोण से, जिसे बुद्ध अच्छे जीवन का आधार मानते थे, उन्होंने जो भी कहा वह आज के उपभोक्तावाद से मुक्ति का मार्ग सुझा सकता है। यह रास्ता 'मध्यमार्ग' है—घोर तत्पश्चर्या और भोगवादिता के बीच तथा घोर आत्मवंचना और विलासिता के बीच। अपने जीवन में बुद्ध ने पहले घर छोड़कर राजकुमार के रूप में मिलने वाली सुविधाओं और सुखों का त्याग किया और फिर, बाद के जीवन में, तपस्वी के रूप में पूर्ण आत्मवंचना को भी तिरस्कृत कर दिया। उनका 'मध्य-मार्ग' आज के युग के अति उपभोक्तावाद से उत्पन्न समस्याओं का एक व्यावहारिक समाधान है।

बुद्ध ने अपने अनुयायियों को जो शिक्षा देने का प्रयास किया उसमें प्रकृति के साथ सामंजस्य शामिल था। यह उन्होंने कई तरह से किया। उदाहरण के लिए, उन्होंने अपने मठवासियों के लिए यह नियम बना दिया था कि वे बरसात के मौसम में धर्मप्रचार के लिए नहीं जाएंगे और मठ में

ही रहेंगे। इसका कारण यह था कि उस मौसम में धरती अपने खालीपन को भरने के लिए तैयार होती है, हरे पौधे बढ़ते हैं, नए अंकुर फूटते हैं और ऐसे में मठवासियों को उन्हें अपने पांवों से कुचलना नहीं चाहिए। बुद्ध के वचनों में प्रकृति का उल्लेख देखने योग्य है जो कई बार पूर्णतः काव्यात्मक होता है। कोई कवि हृदय व्यक्ति ही यह कह सकता है कि समझदार लोग दुख को उसी तरह देखते हैं जैसे कोई पहाड़ी आदमी ऊपर से समतल धरती को देखता है। संभवतः प्रकृति के प्रति यह प्रेम बुद्ध में उस समय विकसित हुआ हो जब वे भिक्षुक की तरह भटक रहे थे। अपने जीवन के अंत तक बुद्ध उद्यानों और उपवनों में रहे—राजगृह में गिलहरियों को खिलाने का मैदान, श्रावस्ती में व्यापारी राजकुमार अनाथपिंडिक द्वारा दान दिया गया जेत उपवन, श्रावस्ती में ही पूर्वी उद्यान में मिगार का घर, वैशाली का विशाल उपवन आदि, आदि। भोग की असीमित लिप्सा या विलासिता की चाह के विरुद्ध उनकी चेतावनी और पवित्रता की गलत अवधारणा से उपजी आत्मवंचना से मुक्ति का बुद्ध का संदेश हमें बताता है कि मनुष्य की आवश्यकता का प्रकृति के साथ सामंजस्य कैसे स्थापित किया जा सकता है।[7]

एक कारण और है जिससे पता चलता है कि बुद्ध के संदेश आज और अधिक प्रासंगिक क्यों हैं। बुद्ध सौहार्द और संवेदना की बात करते थे। कुछ अन्य धर्मों के संस्थापक भी यही बात कहते थे लेकिन बुद्ध के उपदेशों में यह केंद्रीय विषय होता था। भारत और उन अन्य देशों में, जहां लोग बुद्ध को जानते हैं, उनकी छवि सौहार्द और अहिंसा के प्रतीक के रूप में है। इस संबंध में लोगों की अवधारणा सही थी। इसका असर उनकी संस्कृति पर पड़ा। अगर वे स्वयं अहिंसा के सिद्धांत का पालन नहीं कर सके, तब भी उसे नैतिक मूल्य के रूप में मान्यता मिली। ऐतिहासिक संदर्भ में यह कहना संभवतः ठीक नहीं होगा कि लोग, पहले की तुलना में ज्यादा हिंसक हो गए हैं। बुद्ध के काल में और उसके बाद की शताब्दियों में भी हिंसक घटनाएं हुई। अंतर यह है कि आधुनिक विज्ञान ने आदमी को ज्यादा विनाश, मृत्यु और दुख देने की शक्ति दे दी है। इसलिए हिंसा पर रोक लगाना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता बन गयी है। यही कारण है कि सौहार्द और मैत्री का बुद्ध का मिशन वर्तमान समय में ज्यादा प्रासंगिक हो गया है।

ढाई हजार वर्ष पहले बुद्ध इस प्रश्न के उत्तर की तलाश में संसार में निकल पड़े थे कि लोगों को पीड़ा क्यों होती है और उससे उन्हें मुक्ति कैसे मिल सकती है। उनके जीवन को एक लंबी खोज कहा जा सकता है जिसमें उन्होंने, उनकी बात सुनने वाले सभी लोगों को शामिल होने का न्योता दिया। उन्होंने कहा, ''मैं तुम्हें रास्ता दिखा सकता हूं, लेकिन उस रास्ते पर चलना या चलने का ढंग या फिर कितनी दूर चलना है, यह तय करना तुम्हारा काम है।'' ''अपने अंदर झांककर देखो'', उन्होंने कहा, ''क्योंकि राह दिखाने वाला प्रकाश तुम्हारे अंदर ही है।'' यह हमारे लिए एक खुला निमंत्रण है ताकि हम खुद सोच सकें कि आज बुद्ध का हम सबके लिए क्या अर्थ है।

बुद्ध के उपदेशों के स्रोत

बुद्ध के उपदेश प्राचीन पालि ग्रंथों में मिलते हैं जिनका अनेक विद्वानों ने अंग्रेजी में अनुवाद किया है। इस पुस्तक के लिए जिन अनुवादों का सहारा लिया गया है उनकी सूची नीचे दी जा रही है। हालांकि बुद्ध के ये उपदेश उनकी मृत्यु के वर्षो बाद लिखे गए थे, पर हमने अन्य स्रातों की जगह इन्हीं को आधार बनाया। इसके कारण प्रस्तावना में दिए जा चुके हैं। वैसे ऐसी कोई एक किताब या मूल अभिलेख नहीं है जिसमें बुद्ध के सारे उपदेश उपलब्ध हों। सभी प्राचीन अभिलेखों को तीन हिस्सों में बांटा गया है जिन्हें त्रिपिटक कहा जाता है। हमने यहां उनमें से केवल एक सुत्त पिटक का उपयोग किया है। इस पिटक के सुत्त यानी कि सूत के धागे में उनके उपदेश और वचन पिरोये गए हैं। लंबे सुत्तों को दीघ निकाय, मध्यम आकार वालों को मज्झिम निकाय और कुछ आपस में जुड़े सुत्तों को संयुत्त निकाय कहते हैं। इनके अलावा इसमें अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय (छोटे) भी हैं जिसमें प्रसिद्ध धम्मपद और उदान शामिल हैं। हमने विनय पिटक और अभिधम्म पिटक का बहुत कम इस्तेमाल किया है।

विभिन्न वाक्य खंडों के अंत में दिए गए अंक उस अंश के स्रोत के द्योतक हैं जिनका विवरण यहां संलग्न है। सुविधा के लिए विभिन्न ग्रंथों और अभिलेखों के शीर्षक को संक्षेप में कर दिया गया है, जैसे :

दीघ निकाय	=	*दीघ नि.*
मज्झिम निकाय	=	*मज्झिम नि.*
संयुत्त निकाय	=	*संयुत्त नि.*
अंगुत्तर निकाय	=	*अंगुत्तर नि.*
खुद्दक निकाय	=	*खुद्दक नि.*
विनय पिटक	=	*विनय पि.*

गृहस्थ

1. *मज्झिम नि.*, I, 163, 242-47।
2. बुद्ध अग्गिवेषण के साथ बातचीत में अपने पिता को याद करते हैं, *मज्झिम नि.* I, 242-47।

3. बुद्ध की वैशाली में आनंद से वार्ता, *विनय पि.* 2, 10।
4. बुद्ध भिक्षुओं को उपदेश देते हुए बताते हैं कि युवावस्था में घर से निकलते समय उनका स्वरूप कैसा था। आर्य-परियेसन सुत्त; *मज्झिम नि.*, I, 163। बुद्ध और आनंद की श्रावस्ती नगर में वार्ता, *संयुत्त नि.* 5, 216; बुद्ध के रंग-रूप के बारे में।
5. भिक्षुओं को उपदेश में बुद्ध अपनी अनुभूति के संबंध में बताते हैं कि मनुष्य का जन्म किन पीड़ाओं को सहने के लिए होता है, *मज्झिम नि.*, I, 163।
6. कई विद्वानों का मानना है कि बीमारी, वृद्धावस्था और मृत्यु की पीड़ा सह रहे लोगों से बुद्ध की भेंट का *दीघ नि.* और अन्य ग्रंथों में उल्लेख बाद में जोड़ा गया।
7. बुद्ध आत्मत्याग और घर छोड़कर संन्यासी बनने के अपने फैसले के संबंध में बताते हैं, *मज्झिम नि.* 163-66।

बटोही

1. बुद्ध ने बाद में कहा "मैं अच्छाई की तलाश में बटोही और खोजी बना।" और, "मैंने आलार कालाम से संपर्क किया और उनके करीब जाकर मैंने उनसे कहा "मित्र आलार, मैं पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता हूं..." *मज्झिम नि;* I, 163।
2. मगध में बुद्ध के भटकने और ध्यान के लिए आदर्श उपवन की तलाश का विवरण मठवासियों को दिए गए उनके उपदेश में है जो *मज्झिम नि.*, I, 166 और 163 में दर्ज है। बुद्ध के एकांतिक बटोही दिनों और तपश्चर्या का ब्योरा सारिपुत्र से उनकी वार्ता *मज्झिम नि.*, I, 77-9 और आग्गिवेषण से उनकी बातचीत (*मज्झिम नि.*, I, 242-47) में है।
3. बुद्ध की तपस्या, अति आत्मवंचना के त्याग का निर्णय और बोधिवृक्ष के नीचे उनके अनुभव, *मज्झिम नि.*, I, 242-47।
4. बुद्ध की सारिपुत्र से वार्ता, *मज्झिम नि.* I, 77-79; वन के डरावने एकाकीपन के बारे में बुद्ध, *मज्झिम नि.*, I, 20-21।
5. दूसरों को शिक्षा देने की उपयोगिता के संबंध में बुद्ध के संशय, *विनय पि.*, I, 4; एम. I , 168।

6. से 8. बनारस के निकट सारनाथ या इसिपाटन में बुद्ध के उपदेश, *संयुत्त*, 5। 421-23।

9. से 12. दीघ नि., 2, 312।

बुद्ध

1. बुद्ध और राहुल के बीच बातचीत, *मज्झिम नि.*, 420-25।
2. देवदत्त के संबंध में, विनय पि., 2, 7, 2; औ· *संयुत्त*, 2, 242।

3. महाप्रजापति गौतमी, आनंद और बुद्ध का वार्तालाप, विनय पि., 2, 10।
4. अनाथपिंडिक के बारे में, *विनय पि.* 2, 6,4।
5. राजा प्रसेनजित से वार्ता, *उदान* 65-66; ग्वाला नंदा से बातचीत, *संयुत्त नि.*, 179-81; अभिनेता और मंच प्रबंधक तालपुत्तो से संवाद, *संयुत्त नि.*, 4, 305; कुम्हार भग्गव के यहां जाना, *मज्झिम नि.*, 3, 140।
6. अपने संघ में जातिहीन भिक्षुओं के संबंध में बुद्ध, उदान, 5, 5; तथा *विनय पि.*, 2, 9।
7. बुद्ध के अपने वचन औ˙ उन वचनों के उद्धरण में त्रुटि पर बुद्ध के विचार, *अंगुत्तर नि.*, 2, 167।
8. नेत्रहीन लोगों और हाथी की कहानी, बुद्ध के अपने शब्दों में, उदान, 4, 4।
9. 'सब कुछ' पर बुद्ध के उपदेश, *संयुत्त नि.*, 4, 15; मृत्यु के बाद विषय पर रोहितास के साथ बुद्ध की वार्ता, *अंगुत्तर नि.*, 2, 46।
10. वृज्जि राज्य में सभा के संबंध में आनंद के सामने व्यक्त बुद्ध के विचार, *दीघ नि.*, 2, 73; और मठवासियों की सभा में प्रवचन, *दीघ नि.*, 2, 81।
11. संघ के बारे में बुद्ध के विचार, *विनय पि.* 2, 8।
12. मठवासियों को बुद्ध का उपदेश, *विनय. पि.* I, 4 या *संयुत्त नि.*, 5, 421-23।

निर्वाण

1. बुद्ध के अंतिम दिनों का विवरण, *दीघ नि.*, 126; उदान, 8, 5; *दीघ नि.*, 2, 143, 154।
2. बुद्ध की आनंद से वार्ता, *संयुत्त नि.*, 5, 216।
3. सारिपुत्र और काश्यप के संबंध में, *संयुत्त नि.*, 2, 222-23।
4. *दीघ नि.*, 2, 120।
5. बरसात के मौसम में उस समय लगता है, बुद्ध बहुत बीमार थे : "पीड़ा बहुत अधिक थी और ऐसा लगता था कि उनका निधन हो जाएगा।" स्वस्थ होने के बाद, बरसात खत्म होने पर वे अपने अभियान पर आगे निकले और वैशाली पहुंचे, *दीघ नि.*, 2, 99।
6. लुहार, चुंड के साथ बुद्ध की बातचीत और उसके बाद का घटनाक्रम, *दीघ नि.*, 2, 126; *उदान*, 8, 5।
7. *दीघ नि.*, 2, 126; *दीघ नि.*, 3, 138।
8. बुद्ध की आनंद से वार्ता, *दीघ नि.*, 2, 141।
9. बुद्ध की आनंद से चर्चा, *दीघ नि.*, 2, 143।
10. मल्ल देश में, कुशीनगर में बुद्ध की मृत्युशय्या के निकट एकत्र हुए शिष्यों से बुद्ध का वार्तालाप, *दीघ नि.*, 2, 148; बुद्ध आनंद से, *दीघ नि.* 2, 141।
11. बुद्ध मल्ल देश में, शाल वन में अपने शिष्यों से, *दीघ नि.*, 2, 154।

खोज

1. बुद्ध की राजा प्रसेनजित से वार्ता, *अंगुत्तर नि.,* 5, 66-69; बुद्ध कालाम से, *अंगुत्तर नि.,* 1, 188।
2. *मज्झिम नि.,* 3, 107।
3. बुद्ध की किम्बिल से वार्ता, *अंगुत्तर नि.,* 4, 84; बीमार लोगों को उपदेश, *अंगुत्तर नि.,* 1, 120।
4. श्रावस्ती में मालुंक्य पुत्र से बुद्ध का वार्तालाप, *मज्झिम नि.,* 1, 63।
5. बुद्ध अपनी तुलना एक चिकित्सक से करते हैं, *इतिवात्तुक,* 100; भग्गि वंश के नकुलपितर से बातचीत में उनका जीवन में गलती की तुलना रोग से करना, *संयुत्त नि.,* 3; राजगृह नगर में, विशाल उपवन में बुद्ध से मिलने की इच्छा व्यक्त करने वाले रोगी का नाम वेक्काली था, *संयुत्त नि.,* 3, 120।
6. तपश्चर्या के संबंध में सारिपुत्र को बताते हुए बुद्ध, *मज्झिम नि.,* 1, 77-79; मठवासियों की न्यूनतम आवश्यकताओं पर उनके चुंड से वार्ता के दौरान दिए गए निर्देश, *दीघ नि.,* 3, 130।
7. बुद्ध ने मठवासियों को बरसात के दिनों में मठ में ही रहने का निर्देश राजगृह नगर में उनसे बातचीत के दौरान दिया, *विनय पि.,* महावग्ग, 3, 1; बुद्धिमान लोगों की तुलना पहाड़ पर रहने वाले व्यक्ति द्वारा नीचे रहने वालों को देखने से करना, *विनय. पि.,* I, 4 और *धम्मपद,* 28।

अंग्रेजी अनुवाद

दीघ निकाय : *डायलाग्स आफ द बुद्ध,* अनुवाद टी.डब्ल्यू. और सी.ए.एफ. राइ डेविड्स, 3 खंड (1899-1921, लंदन)

मज्झिम निकाय : *मिडल लेंग्थ सेईंग्स,* अनुवाद आई.बी. हॉर्नर, 3 खंड (1954-59, लंदन)

संयुत्त निकाय : *किंड्रेड सेईंग्स,* अनुवाद सी.ए.एफ. राइ डेविड्स, एस.एस.थेरा, एफ. एल. वुडवर्ड, 5 खंड (1917-30, लंदन)

अंगुत्तर निकाय : *ग्रेजुअल सेईंग्स,* अनुवाद एफ.एल. वुडवर्ड और ई.एम. हेयर, 5 खंड (1932-36, लंदन)

विनय पिटक : *द बुक आफ द डिस्पिलिन,* अनुवाद आई.बी. हॉर्नर (1938, लंदन)

उदान : *वर्सेज आफ अपलिफ्ट,* अनुवाद एफ.एल. वुडवर्ड (1935, लंदन)

खुद्दक पथ : *सम सेईंग्स आफ द बुद्ध,* अनुवाद एफ.एल. वुडवर्ड (1925, लंदन)

बुद्ध के चित्र

प्लेट 1 : कपिलवस्तु के महल के राजसी शयनकक्ष में महारानी माया एक पुत्र की प्राप्ति का सपना देखती हैं। इस घटना और बुद्ध के जन्म के छह सौ साल बाद सातवाहन काल (दूसरी शताब्दी) के एक मूर्तिकार ने इस दृश्य की कल्पना करके यह प्रतिमा बनायी।

प्लेट 2 : राजकुमार गौतम कपिलवस्तु में अपने परिवार, दरबारियों और सेवकों को छोड़कर घर से निकलते हुए। यह मूर्ति दूसरी या तीसरी शताब्दी में सिंधु नदी के किनारे गांधार के एक मूर्तिकार ने बनायी। इस पर यूनानी कला का प्रभाव है।

प्लेट 3 : तपस्वी बुद्ध की मुखाकृति जो उनके यायावर बनने के 600 साल बाद दूसरी शताब्दी में बनारस में बनायी गयी। उस समय बुद्ध अपनी आत्मा पर नियंत्रण के लिए अपने शरीर को यातना दे रहे थे।

प्लेट 4 : बोधिवृक्ष जिसके नीचे बैठकर गौतम ने ध्यान किया और 'बुद्ध' बने। यह बुद्ध के प्रतीक के रूप में वृक्ष फाइकस रेलिजिओसा के प्रारंभिक चित्रों (भारहुत, दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) में से एक है। बुद्ध के किसी तत्कालीन चित्र के अभाव में उनकी जगह वृक्ष, उनके पदचिह्न या धर्मचक्र को पांच सौ साल तक बुद्ध का प्रतिनिधित्व करने वाला माना गया। भारहुत प्रतिमाओं में, जो बुद्ध के निधन के करीब 400 साल के भीतर बनायी गयी थीं, वृक्ष के नीचे खाली आसन दिखाया जाता था, जबकि बाद में बुद्ध की काल्पनिक छवियां बनायी जाने लगीं।

प्लेट 5 : बुद्ध उपदेश देते हुए : इस भंगिमा को 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन मुद्रा' कहा जाता है। प्राचीन काल के एक प्रमुख बौद्ध धर्म केंद्र, सारनाथ में मिली यह प्रतिमा गुप्तकाल (पांचवी शताब्दी) की कला के श्रेष्ठ नमूनों में से एक है।

प्लेट 6 : एक व्यापारी द्वारा बुद्ध को दिया गया एक स्मरणीय उपहार (भारहुत गोलाकार फलक, दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) : श्रावस्ती नगर के एक अति समृद्ध व्यापारी अनाथपिंडिक ने राजकुमार जेत का उपवन खरीद लिया था ताकि बुद्ध को शहर से बाहर विश्राम के लिए स्थान मिल सके। इस फलक के दाहिनी तरफ नीचे

एक बैलगाड़ी का चित्र है (देश के उस भाग में ऐसी बैलगाड़ियां आज भी मिलती हैं) और ढेर सारी छापे वाली मुद्राएं जो राजकुमार जेता ने, मजाक में, उद्यान की कीमत के रूप में व्यापारी से मांगी थीं। इसमें सेवक "उद्यान की धरती को ढंकने के लिए" मुद्राएं बिखेर रहे हैं। इस फलक के केंद्र में बोधिवृक्ष के तर्पण का चित्र है जिसे बुद्ध का प्रतीक माना जाता था और बायीं ओर नीचे बोधिवृक्ष है। इस तरह मूर्तियों और भित्तिचित्रों के माध्यम से बुद्ध की कथा लोगों तक पहुंचाने का प्रयास किया जाता था। भारतीय लोकगायक आज भी पोस्टर जैसे चित्रों का इस्तेमाल करते हैं।

प्लेट 7 : बुद्ध के स्वागत के लिए राजसी यात्रा : यह फलक सांची के स्तूप के उत्तरी द्वार पर बनी मूर्तियों से लिया गया है जिसमें राजा के सिर पर छतरी है और वह घोड़े पर सवार होकर अन्य लोगों के साथ बुद्ध के स्वागत के लिए जा रहे हैं। सांची स्तूप का निर्माण दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर पहली शताब्दी के बीच हुआ था। यह चित्र संभवतः श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित का है लेकिन उनकी ठीक से पहचान करना संभव नहीं है क्योंकि सांची की मूर्तियों में भारहुत की तरह नाम नहीं दिए गए हैं।

प्लेट 8 : बुद्ध का निधन : इसे महापरिनिर्वाण कहा जाता है। उनकी मृत्यु का यह दृश्य तमाम प्रतिमाओं और चित्र-शृंखलाओं में अंकित बुद्ध के जीवन के एक हिस्से से लिया गया है। यह चित्र गांधार के एक मूर्तिकार ने तीसरी या दूसरी शताब्दी में अपनी कल्पना से बनाया।

प्लेट 9 : बुद्ध की आराधना : बड़े-छोटे सभी बुद्ध के प्रतीक के रूप में बोधिवृक्ष की पूजा करते हैं जिसके नीचे का आसन खाली है। यह प्रतिमा सांची (लगभग पहली शताब्दी ईसा पूर्व) के पूर्वी द्वार पर अंकित है जिसमें बोधिवृक्ष की शाखाएं बुद्ध के अनुयायियों द्वारा बाद में बनाए गए चैत्य या मंदिर से मिल जाती हैं। कहा जाता है कि ऐसा एक चैत्य सम्राट अशोक ने बनवाया था।

आभार : लेखक ये चित्र उपलब्ध कराने के लिए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का आभारी है।

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित